विक्रेता
नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स,
चौक, काशी।

प्रथमावृत्ति
मूल्य १)

मुद्रक—
बी. के. शास्त्री;
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, काशी।
२१०४

वीथिका

कविता के क्षेत्र में जब से खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा हो गई, तब से कवियों का ध्यान उसमें काव्य-विषयों के संविधान की ओर विशेष रूप से गया। काव्य-विषयों की सीमा का विस्तार हो जाने से कवियों ने भिन्न भिन्न मार्ग पकड़े और उनके स्वरूप स्पष्टतया पृथक् पृथक् प्रतीत होने लगे। हिंदी कविता की नवीन धारा मे 'छायावाद' नाम से जो प्रवाह मिला, उससे एक बार ऐसी बाढ़ आ गई कि कुछ लोग उद्विग्न हो उठे। पर अब उसका वेग धीरे धीरे संयत होने लगा है और पानी उतर गया है। इस प्रवाह के साथ कुछ छूटे हुए उपेक्षित काव्य-विषयों का भी मेल हो जाना चाहिए था, पर वैसा बहुत कम हुआ; कुछ परंपरा-प्राप्त विषयों का ही उसमे अधिकतर ग्रहण दिखाई पड़ा। विशेष ध्यान अभिव्यंजना पर ही रहा, विभाव पक्ष की ओर उनकी वैसी दृष्टि ही नहीं गई।

हिंदी में जिनकी दृष्टि इस विधान की ओर विशेष रूप से गई वे 'भक्त' जी हैं। कविता के आलंबन के रूप में इन्होंने उन्हें भी ग्रहण किया जो काव्य-क्षेत्र से उपेक्षित थे अथवा जिनका ग्रहण हुआ ही नहीं था। इनके ऐसे आलंबन दो प्रकार के दिखाई देते हैं—एक प्रकृतिगत और दूसरे लोकगत। यद्यपि प्रकृति को आलंबन के रूप में फिर से ग्रहण करने का आंदोलन आधुनिक काल के आरंभ मे ही उठा था, पर पं० श्रीधर पाठक को छोड़ कर

कोई दूसरा कवि उसकी विभूति पर उस समय वैसा मुग्ध नहीं हुआ। हाँ, गद्य के क्षेत्र में ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी प्रकृति की शोभा के मनोरम दृश्य अंकित किए। इन सहृदय व्यक्तियों ने प्रकृति-सुषमा की रूप-रेखा बहुत ही रमणीय खींची, इसमें संदेह नहीं। किंतु इनके वे वर्णन अलंकृत शैली में हुए हैं। अलंकारों के अधिक लदाव से कहीं कहीं उनकी चमक में शोभा दब सी भी गई है। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि कवि के हृदय को ऐसे ही दृश्य आकृष्ट कर सके हैं, जो अद्भुत कहे जाते हैं या जो विशिष्ट हैं। सामान्य दृश्यों, सामान्य पशु पक्षियों, सामान्य लता-वृक्षों आदि की ओर इनकी दृष्टि उतनी नहीं गई जितनी जानी चाहिए।

इस अभाव की पूर्ति 'भक्त' जी की कविता द्वारा हुई, जो 'घमोय' (सत्यानाशी, भड़भाँड़) की छटा पर भी मुग्ध होते हैं, जो टिटिहरी की वाणी से भी आकृष्ट होते हैं और जिनके हृदय में ऊदबिलाव के लिए भी उतना ही स्थान है जितना किसी परंपरा-प्रेमी के हृदय में गजेंद्र के लिए हो सकता है। यद्यपि संप्रति इस सामान्य सृष्टि की ओर हिंदी-कवियों की अभिरुचि अँगरेजी साहित्य की ही प्रेरणा से हुई है तथापि है यह वस्तुतः भारतीय साहित्य की प्राचीन प्रवृत्ति ही। महर्षि वाल्मीकि ने प्रकृति-वर्णनों में सामान्य पेड़-पल्लवों या पशु-पक्षियों का नाम लेने में संकोच नहीं किया है। यह प्रवृत्ति संस्कृत-वाङ्मय में कुछ कुछ कालिदास और भवभूति तक तो बनी रही, पर श्रीहर्ष तक आते आते बहुत-कुछ परिवर्तित हो गई। काव्य में विशिष्ट का ही महत्त्व रह गया, साधारण उपेक्षित हो गया। आरंभ में हिंदी-कवि एक तो प्रकृति की ओर झुके ही नहीं, दूसरे जब झुके भी तो उससे अधिकतर उद्दीपन का ही काम लेते रहे। आधुनिक काल में प्रकृति की विभूति के दर्शन

कराने में वे फिर से प्रवृत्त हुए हैं और हर्ष की बात है कि 'भक्त' जी इसमें विशेष रूप से प्रवृत्त हैं।

लोकगत आलंबनों के चुनाव में भी यही बात देखी जाती है। उसमें भी सामान्य की ओर ही कवि का झुकाव अधिक है। अब तो अन्य नागर कवि भी ग्राम्या विभूति की छटा दिखाने लगे हैं। यदि साम्प्रदायिक आंदोलन एवं प्रचार के रूप में सामान्य की ओर आकृष्ट होने की प्रवृत्ति न जगे तो इसमें संदेह नहीं कि काव्य में इन आलंबनों के विधान से वाङ्मय के विराट् रूप के दर्शन होंगे। 'भक्त' जी की जितनी ऐसी कविताएँ देखने में आई हैं वे स्वच्छंद और भावमयी हैं, इसलिए यह कहा जा सकता है कि वे किसी वाद की प्रेरणा से नहीं प्रस्तुत हुई हैं और उनमें काव्य के ठीक लक्ष्य का संधान है।

विषय की सादगी और लक्ष्य की सचाई के साथ साथ भाषा का चलता-पन तथा मुहावरों की योजना भी इनकी कविताओं की विशेषता है। हिंदी में लाक्षणिकता का जो विधान छायावाद नाम की कविता में देखा जाता है वह अधिकतर विदेशी अनुकरण पर हुआ है। हिंदी की अपनी पद्धति पर यदि उसका विधान और प्रयोग हुआ होता तो भाषा के विचार से बहुत संभव था बहुतों को कम उलझन होती; उसका संकेत समझना सहज होता, वह रूढ़ि जानी-पहचानी होती। यद्यपि 'भक्त' जी के इस 'वाग्योग' में अपने नए लाक्षणिक प्रयोग नहीं हैं, पर उसमें कहीं कहीं नवीनता की ओर संकेत अवश्य मिलते हैं। आधुनिक काल में जिस प्रकार स्वर्गीय रत्नाकर जी अपनी ब्रजभाषा की कविता में कुछ नए संकेत दे गए हैं और जिस प्रकार 'प्रसाद' जी हिंदी के ढर्रे पर कुछ नए संकेत कर गए हैं उसी प्रकार 'भक्त' जी में भी कुछ मिलते हैं। इसलिए भाषा की दृष्टि से भी इनकी रचना का महत्त्व है।

इन सब बातों पर विचार करके कहना पड़ता है कि 'भक्त' जी हिंदी के नवीन युग के एक अनोखे और निराले कवि हैं, 'वन-श्री' में इन्होंने जो मार्ग पकड़ा है वह साहित्य की दृष्टि से उपादेय है और उससे हिंदी-वाङ्मय का राजपथ प्रशस्त होगा। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि इस संग्रह का हिंदी-प्रेमियों द्वारा उचित समादर होगा। क्योंकि,

'कविः करोति काव्यानि स्वादं जानन्ति सज्जनाः।'

ब्रह्मनाल,
काशी। } विश्वनाथप्रसाद मिश्र

सूची

—*—

वन-श्री

ऋतुराज

फूलों से कचनार लदे हैं, अब पतझड़ का अन्त हुआ,
हिम-तुषार के धुआँधार से मुक्त प्रफुल्ल दिगन्त हुआ।
सहदेइया[1], मुंडी[2], मदार[3], हैं कुसुमित खिली शंखपुष्पी[4],
चकवड़[5] औ' वरियार[6] जल गये, लगी फूलने बनगोभी[7]।
वंशी बना रहा है मानो बाँस छेद अलि करके नाद,
पीत पाँवड़े बिछा रहे हैं वृक्ष किसी की करके याद।
विहग वसन्ता[8] का खुट खुट रव लगा निरन्तर खाने कान,
श्यामा मैना बैठ डाल पर लगी छेड़ने प्यारी तान।
फुलसुँघनी[9] ने एक लता से लटकाया जाले-सा नीड़,
दहियल[10] गा गा कर निज स्वर के तारों पर देता है मीड़।
विहगी के मोहित करने को, पंडुक[11] प्रेम-गीत गा कर,
नाच दिखाता बाल फुला कर, पर खुजला कर, तरसा कर।
कोमल करुण कपोत-विनय पर नहि कपोतिका देती कान,
जितना ही यह उसे मनाता, उतना ही वह रचती मान।
फूले अरहर के खेतों में छिपा वटेरो[12] का है गोल,
ठौर ठौर पर सुन पड़ता है विविध विहंगों का मृदु बोल।

१–७ घास विशेष

८–१२ पक्षी विशेष

विमल प्रभा में रजनीपति की, पत्र-विहीन पेड़ की डाल,
चित्र-विचित्र बनाती भू पर, चित्रित करती चित का हाल।
उजड़े पड़े पलासों के वन, काली कलियाँ बस दो-चार
लाल लाल हैं जीभ निकाले, खा कर शिशिर-पवन की मार।
फूले हैं रसाल, रतिनायक पत्तों में छिप छिप कर, बाण
मार रहा है तान तान कर, लेने को विरही के प्राण।
काँटेदार एक झाड़ी की किसी त्रिफंकी डाली पर,
है प्याला-सा बना घोंसला—अन्दर है रूई औ' पर।
पत्तों ही का दुर्ग बना है, नहि निगाह का वहाँ गुज़र,
काँटे भाले लिये खड़े हैं, सूर्य-किरण भी जाती डर।
उसमें आ छोटी-सी चिड़िया बैठ गई अंडे पर जब,
घूँघट हटा खोल दी झाँकी पत्ते गिरा शिशिर ने तब।
इकदम परदा हटा देख कर चिड़ियाँ चक्कर में आईं,
पर में अपना शीश छिपाये हुए बहुत ही घबड़ाईं।
इतने ही में पहुँचा आ कर अपना दल ले कर ऋतुराज,
स्वागत गाने लगा विहंगम फूल फूल सज सज कर साज।
इस चिड़िया की दशा देख कर उसको बड़ी दया आई,
हरा-भरा कर दिया विपिन को, कलियाँ खिल खिल मुसकाईं।
नव पल्लव से उसकी झाड़ी अपने हाथ सजा आया,
चितकबरे उसके अंडे पर फूलों को जा लटकाया।
शीघ्र नये बच्चों को ले कर खगी मंजु गुण गावेगी,
फूले फले वसन्त सदा वह नित उठ यही मनावेगी।

ग्रीष्म

यौवन पर है ग्रीष्म, दिवाकर चढ़ आया है ऊपर।
नहीं मेघ का नाम कहीं है, स्वेद बरसता झर-झर॥
किरणें नाच रही हैं, पृथ्वी से है लपट निकलती।
पानी जलने लगा सरों का आग रेत पर बलती॥
सार ताप से फैल गया है नदी सिकुड़ती जाती।
गरमी ज्यों ज्यों बढ़ती जाती, ठंढी पड़ती जाती॥
सरिता सूख हुई है काँटा, फूला हरा जवासा।
जाती जान किसी चिड़िया की शिशु का हुआ तमाशा॥
जल छिपता फिरता 'सिवार' में, मोथों के साये में।
बुदबुद के अंगूर छिपे हैं फेन-जाल-फाये में॥
श्वास-धार रुक रुक चलती है, नब्ज नहीं है मिलती।
पत्थर तोड़ पीस देती थी, घास नहीं अब हिलती॥
ज्यों ही जीभ प्यास से निकली, डाले लू ने छाले।
लहरों में बुदबुद छाये हैं, जीवन के हैं लाले॥
फूले झाऊ का दहका है अंचल में अंगारा।
आहें है भर रहा आग में जलता हुआ करारा॥
जो सरिता को भरे अंक में शीतल करता छाती।
तटिनी जिसके मुख पर उठ उठ चुम्बन-छाप लगाती॥

आज सूर्य उसका वैरी बन कर—रथ पर बैठाये ।
सरिता-हरण किये जाता है, तट को दूर हटाये ॥
विरह-विहग 'पतरँगा' 'मैना' आ छाती छलनी कर ।
तट के मानस के अन्दर रस रहे बना अपना घर ॥
फिर उन विहगों के उर में निज निहित प्रेम-प्रतिमा रच ।
तट सेता है बड़े यत्न से विरह-ज्वाल में तच तच ॥
खड़ा खड़ा आहें भरता है दोनों बाँह उठा कर ।
तटिनी भी सूखी जाती है प्रिय-वियोग-दुख से भर ॥
स्वर्ण-कटोरे में 'घमोय'[1] प्यासी जल याच रही है ।
बाँस छेद बंसी के स्वर पर मधुपी नाच रही है ॥
मन्दारो के तापपुंज से, होंठ पड़ गये नीले ।
पीले वेणु हुए, 'तिनपतिया'[2] में छिप सोये टीले ॥
मधुमक्खी जल गई फूल पर पानी पर जा बैठी ।
कमलनाल है भाँज रहा फूलों की बना बनैठी ॥
कोसों तक करील के वन में तितली फिर आती है ।
पत्तों की भी छाँह नहीं छिपने को वह पाती है ॥
चिड़ियाँ भूल गई हैं गाना हाँप हाँप मुरझाई ।
किसी जलाशय के तटस्थ तरु पर छिप जान बचाई ॥
छिपा केहरी किसी कन्दरा में है जीभ निकाले ।
हिरन चौकड़ी भरना भूले, हुए धूप से काले ॥

१ एक काँटेदार घास, जिसके पीले-पीले फूल होते हैं

२ एक घास

चरवाहे ढोरों को ले कर वट के तले पड़े हैं।
उस नीलाम्बर भू-किरीट में अगणित लाल जड़े हैं॥
पूषण पावक बरसाता है वट नागर लटधारी।
उँगली पर वट लिए खड़ा है, करता है रखवारी॥
रविकर-बूँद एक भी कोई पास न जाने पाती।
तले चैन की बंसी बजती, धूप हवा है खाती॥
हिम-गिरि के मस्तक से निर्झर बन बह चला पसीना।
पानी में है जान सभी की जीवन ही है जीना॥

वर्षा

ज्वर-सा ताप चढ़ा था जग पर, नहीं उतरता था पारा ;
सूख सूख हो क्षीण-कलेवर बहती थीं सरिता-धारा ;
बालू था बल[1] रहा सलिल जल कर तट को देता था छोड़ ;
फैल गये सारे गरमी से, ली सरिता ने देह सिकोड़ ;
जीने के लाले पड़ आये या उड़ते अंगारे हैं ;
ग्रीष्मराज के लाल सँवारे अथवा राजदुलारे हैं ;
अथवा ईर्ष्यावन्त प्रकृति-सा देख और पौधों का ह्रास ;
मन में फूला नहीं समा कर विहँस रहा है कुटिल जवास ;
धूप कह रही खूब पडूँगी, उसकी फिरी दुहाई है ;
हवा गई है बिगड़ हवा की, फिरती वह घबड़ाई है ;
जलती गरमी में तरंग ने जीभ निकाली है ज्यों ही ;
उठा बुलबुला, लहर-जीभ में छाला पड़ आया त्यों ही ;
पानीयुत मोती को जैसे पानी में रक्खे हो सीप ;
भुजा-मध्य आलिंगित शिशु-सा दो-धारा-मध्यस्थित द्वीप ;
पानी के कम हो जाने से, नदी-गर्भ से हो ऊपर ;
सूर्य-रश्मि में लगा चमकने, छोड़ गई निज चिह्न लहर ;
मछली का था वास जहाँ पर वहाँ लगी उड़ने है धूल ;
जलचर थलचर नभचर दिन में जहाँ नहीं आते हैं भूल ;

[1] जलना

किन्तु उसी सुनसान द्वीप में, उसी रेत में—भूभल[1] में,
जहाँ नाच कर लहर हवा की गरमी से जाती जल में ;
अंडे पर बैठे सेते हैं बहुत टिटिहरी के जोड़े,
गरमी में गरमी देते हैं, बैठे पाँव - पंख तोड़े ;
मादा जब अंडे को सेती, चौकीदारी करता नर,
चिल्ला कर सचेत कर देता जब कोई भी होता डर ;
इसी तरह बारी बारी से चारा चुगते सेते हैं,
पंच - अग्नि की ताप प्रेम से तप पूरा कर लेते हैं ;
अब हठ-योग हुआ है पूरा, मिला तपस्या का भी फल,
मोती-से अंडे सब टूटे, उनसे आये लाल निकल ;
सुन्दर बच्चे लगे दौड़ने तात - मात के पीछे लग,
उन भूखों को लगे चुगाने ये बेचारे भी जग जग ;
जब तक नभ में बादल छाये, खूब लगे उड़ने ये भी,
मछली खुद ही लगे पकड़ने, डूब डूब पानी में भी ;
दिनकर ने चाहा पी डालूँ उड़ा सभी पृथ्वी का जल,
चाहा पूर्ण-पयोधि पान कर दिखलाना कुंभज-सा बल ;
इसी गर्व में लगे सुखाने जीवन-स्रोत वनस्पति का,
झुलस गई सारी हरियाली, मुरझा गई नवल लतिका ;
खोले हुए सिवार-बाल को, कृशित कलेवर धीमी चाल,
सरिता सरितापति से मिल कर रो रो लगी बताने हाल—

१ लगरम बा

"डींग मारते हो तुम प्रियवर ! सुधा-रत्न उपजाने की,
कमलापति को कमला दे कर देव-लोक अपनाने की;
अपनी प्रबल विशाल भुजा से बाँधे हो भू मंडल को,
डाले हो निज हृदय-गर्त में कितने उच्च हिमाचल को;
माना तुम गम्भीर बड़े हो धीर बड़े ही प्राणाधार !
फिर भी सहनशीलता की कुछ हद होती है आखिरकार;
यह सब अच्छी तरह जानता हुआ रचे तुमसे फिर वैर,
कौन ? वही दिनकर बेचारा, है अन्धेर नहीं अब खैर;
मुझे जला कर सुखा दिया है, जीती मरती आई हूँ,
तुमको लाज नहीं फिर भी कुछ, यही देख शर्माई हूँ।"
यह सब सुन जलनिधि ने समझा दिनकर के उत्पातों को,
लज्जित हुआ परम क्रोधित हो, सह न सका इन बातों को;
दल-बादल को तुरत बुला कर बोला, "ऐ मेरे रण-वीर !
बहुत खेत तुमने जीते हैं, कभी नहीं चूका है तीर;
आज समर करना है तुमको बहुत चमकनेवाले से,
आज तुम्हें लोहा लेना है बहुत बहकनेवाले से;
जाओ अभी घेर लो उसको अन्धकार में रक्खो बन्द,
ब्रह्म-शस्त्र को छोड़ छोड़ कर तुरत मिटा दो सारा द्वन्द्व;
केवल उसका गर्व खर्व कर, कर उसके घमंड को भंग,
उसको देना छोड़ क़ैद से, और अधिक मत करना तंग;
अमल अमृत लो, इसे मिलाकर सरस सुधा बरसा देना,
सूखे मुरझाये जीवों को जीवन दे हर्षा देना;

मीन मलीन दीन हों दुख से खोल खोल मुख बारंबार,
शेप बचे थोड़े पानी में मरते हैं गरमी से हार—
सलिलपूर्ण कर दो पृथ्वी को, भर दो सर को पानी से,
मीन खेलते रहें, देखता रहे सूर्य हैरानी से;
पृथ्वी को जा जलमय कर दो, सर-सरिता को कर दो एक,
जला जला दो रवि कहता है, जल जल कर दो मेरी टेक;
यदि वह मेरा मित्र न होता करता उसकी गरमी शान्त,
इतने ही में सँभल जायगा, सत्य हो गया है वह भ्रान्त;
लो यह धनुष चढ़ा कर इसको, अगर छोड़ दोगे इक शर,
लाल लाल वह हो जावेगा, डूबेगा लज्जा से मर।"
सुन यह फड़क उठे सब जलधर, हुए लड़ाई को तैयार,
सबने निज तलवार निकाली, धनुष निकाला की टंकार;
घेर लिया घन ने नभ-मंडल, मेघनाद-सा करके नाद,
करने लगा बाण-सी वर्षा, उपजा कर मन में आह्लाद;
गरमी शान्त हुई दिनकर की और ताप ने तोड़ा दम,
खोल खोल मुख जल पीने से प्यास हुई पृथ्वी की कम;
औरों ने भी किया चढ़ाई, गये व्योम-मंडल मे छा,
ताल ठोंक कर लगे गरजने, रणभेरी को बजा बजा;
बोला कोई, 'निगल जायँगे इसको हम बन कर हनुमान,
सारी तेज़ी तुरत मिटा कर, दूर करेंगे सारी शान';
बोला एक, 'निकलने मत दो, चक्रव्यूह रच रक्खो घेर,
रक्खो यहीं बना कर बन्दी, मचा रहे हैं ये अन्धेर';

'मैं तो इनसे लोहा लूँगा', बोला इक आगे बढ़ कर,
'मल्लयुद्ध कर मैं समझूँगा', कहा दूसरे ने चढ़ कर;
'इनको राहु छोड़ देता है, कभी नहीं मैं छोड़ूँगा,
चट कर जाऊँगा मैं पूरा, सब घमंड मैं तोड़ूँगा';
हुए क्रोध से नीले पीले, लिये शस्त्र पानीवाले,
घूम घूम कर लगे गरजने चमक चमक बन मतवाले;
सूर्यदेव ने देखी सेना मेघराज की पड़ी हुई,
कहीं चमकती तलवारें थीं, कहीं तोप थी अड़ी हुई;
दूना हुआ क्रोध का पारा, बेहद लाल हुए रिस से,
'इन सबको क्या नहीं सूझता, जाता हूँ भिड़ने किससे?
चाहूँ अभी जला दूँ सबको, आग लगा दूँ पानी में,
सरिता-सिन्धु अभी पी डालूँ, भूले हैं नादानी में;
नहीं मानते हो तो आओ, करता हूँ शर की बौछार,
बरसाता हूँ प्रलय-अग्नि को, अभी जला करता हूँ छार;
छोड़े अस्त्र-शस्त्र दोनों ने, चमक उठी चम चम तलवार,
तोपें चलीं, आग भी बरसी, होने लगा वार पर वार;
कभी मेघ को छेद भेद कर रूई-सा करके टुकड़ा,
तेजवन्त दिनकर जय पाता, धज्जी उसकी उड़ा उड़ा;
बादल कभी घेर दिनकर को दूर भगा ले जाते थे,
घायल करते उसे गिरा कर, खून बहा नहलाते थे;
सुबह-शाम दोनों ही दल में हो जाती थी गहरी मार,
दोनों लहू-लहू हो जाते, चलते थे इतने हथियार;

मूर्छा ही के आ जाने पर लेते थे थोड़ा विश्राम,
और नहीं तो लड़ते रहते, रुकने का नहि लेते नाम;
विकट अंशुमाली आतप से सूख गई थी हरियाली,
मुरदों ही सी गड़ी हुई थी जिनकी भू में जड़ खाली;
रस-वर्षा कर मेघराज ने कहा—'निकल आओ बाहर,
मैं आ गया बजा कर डंका, नहीं किसी का मानो डर';
पत्तों की तलवार बाँध कर, कोंपल का ताने भाला,
हरी घास बढ़ बढ़ कर बोली—'आये तो लड़नेवाला!'
बीज पड़े जो सोते थे उग हरे हरे हो पर फैला,
चाहा चिड़ियों-सा उड़ जाना, जड़ जालों ने लिया फँसा;
जितने भी थे रवि के मारे, जिन्हें जलाया था कर छार,
सबके सूखे तन में घन ने तुरत किया जीवन-संचार;
कृशित नदी बढ़ चली उमड़ कर समय देख अपने अनुकूल,
पा कर बाढ़ बनी मदमाती, हुआ सलिलमय सारा कूल;
सरितापति का देख सहारा, लख कर धाराधर की फौज,
जली हुई रवि की किरणों से निकल चली करने को मौज;
धानों की क्यारी को भरती, जल में घिरे बबूलों को,
ले ले लहर गई बढ़ती ही छूने तरु के फूलों को;
उगा हुआ था घना कछारों में झाऊ[1] सरपत का वन,
जिनके झुरमुट में शूकरगण मिट्टी को दाँतों से खन[3];

१–२ घास विशेष

३ खोद

नीचे की गीली मिट्टी में लोट लोट हो कर शीतल,
झाड़ों में वच्चे देते थे, लिपट लिपट करते थे वल;
देख निवास डूबता अपना, सीधा तैर नदी कर पार,
ऊँचे थल में किसी खेत में छिप रहने का किया विचार;
घनी घनी जुन्हरी[1] चारे की, काट गँड़ासे से, जड़ छोड़,
चला किसान धरे कन्धे पर पकड़ हाथ से पौधे जोड़;
दौड़े दौड़े शूकर आये, खेतों में जुआर[2] के जा,
खड़ खड़ पौधे लगे तोड़ने, तब किसान का ध्यान गया;
वोझा फेंक, मचाता हल्ला, हरियाली समुद्र को चीर,
फूले वालों के हिलने से नव पराग से भरा शरीर;
पहुँचा जा मचान पर अपने, शोभित ज्यों जल में जलयान,
लगा देखने शूकर को जो; गया नदी पर उसका ध्यान;
देखा अति विकराल रूप से नदी वढ़ी ही आती है,
कुछ लट्ठे वस और दूर है, प्रलय-काल दिखलाती है;
देखूँ चलूँ झोपड़ी अपनी डूबी है या बची हुई,
हम दोनों के लिये सदा ही रहती आफत मची हुई;
आये थे तव यहाँ मेड़ थी, इक पगडंडी थी जाती,
अरे! यहाँ तो एक घड़ी में नदी नदी ही लहराती;
आखिर हो कर वही रहा, मेरे जी में था जिसका डर,
दैव हुए प्रतिकूल हमारे, घर में सलिल गया है भर;

१-२ अन्न विशेष

ईंटों पर खटिया रख करके, जाँते[1] पर ओखल रख कर,
बच्चों को उस पर बिठला कर गृहिणी काँप रही थरथर;
मुझे देख घरवाली रोई, बच्चा हँस बोला तुतला,
"घर में गंगा जी आई हैं, बाबू! दो इक नाव चला।"
ओखल पर से छोटी लड़की ने घबड़ाते हुए कहा,
"नदी कहाँ की आई, मेरा बना घरौंदा दिया बहा!"
दोनों का मुख चूम प्रेम से, घरवाली को धीरज दे,
उतराती थाली कठवत[2] को ऊपर बाँधा छप्पर के;
भैंस तुड़ा इक भाग गई थी, बैल उछल करते थे ज़ोर,
घुटनों तक जल में छप छप कर देते थे खूँटा झकझोर;
खड़े खड़े यों रात काट दी, राम राम कर हुआ बिहान[3],
देखा पानी सरक चला था, अतः जान में आई जान;
बाँवी में जल भर आने से साँप निकल घबड़ा कर झट,
जल को तैर पेड़ पा करके, चढ़ा डाल पर गया लिपट;
उसी डाल पर एक नेवला भीगी बिल्ली बना हुआ,
बैठा था चुपचाप ध्यान में, पानी से अनमना हुआ;
गोते खा खरगोश बिचारा एक भैंस को बहती पा,
बड़े उछलते हुए हृदय से कूद पीठ पर बैठा जा;

१ चक्की

२ लकड़ी का बर्तन

३ सुबह

सरिता थी यौवन-मदमाती, यह उसकी अठखेली थी,
मौज उड़ा कर आज़ादी से इतना कभी न खेली थी;
घर में बैठी तन बटोर कर, गया सैर से जब मन भर,
परिपूरन सब हुए सलिल से नद नाले गड्ढे औ' सर;
सभी किया कस कमर मेघ ने, स्वामी ने जो दिया निदेश,
तीन मास तक रंग-भूमि में लड़े खूब घन और दिनेश;
नहीं विजय निश्चित हो पाई, थे दोनों के दोनों वीर,
दोनों ही दल खूब लड़े थे, दोनों थे हो चले अधीर;
होता देख अनिष्ट बड़ा ही ऐसी खींचातानी में,
नहीं मेल की कुछ भी आशा देख आग औ' पानी में—
चन्द्रदेव मध्यस्थ हुए तब, समझाने का भार लिया,
समर को स्थगित कर देने पर दोनों को तैयार किया;
कास[1]-सुमन की श्वेत पताका फहराई अवनीतल पर,
वकमाला की ध्वजा मंजुतम लहराई भू-मंडल पर;
अस्त सूर्य जा मिले सिन्धु से, हुई सन्धि की पूरी बात,
हुई दूर पावक की वर्षा मिटा मेघ का भी उत्पात;
दूर मनोमालिन्य किया, कर उदय-अस्त के समय मिलन,
रवितनया ने सुरसरि से मिल किया प्रेम का दृढ़ बन्धन;
सागर-हृदय तरंगित होता सोच कलानिधि का उपकार,
इसी लिये देखा जाता है उनमें यह सुन्दर व्यवहार।

---

[1] घास विशेष

पावस-प्रमोद

विल्व-वृक्ष नव दल से सज कर जब कलियाँ चटकाता है,
वायु-विकम्पित पुष्प-भार से वकुल-वृक्ष झुक जाता है;
फुलसुँघनी[1] चिड़ियों के जोड़े जब रस लेने आते हैं,
फूल अछूते छूते ही बस आँसू-से झर जाते हैं;
ताप-निवारण करने को जब श्याम-मेघ छा जाते हैं,
तब पावस का स्वागत गा गा हम कितना सुख पाते हैं।
हवा चली, पानी भी आया, जलमय सारी भूमि हुई,
बाल-मंडली में कागज की नौकाओं की धूम हुई;
छोड़ समाधि निकल आये हैं पीत-वर्ण दादुर बाहर,
चिड़ियों की बन आई, जब से चींटों के निकले हैं पर;
नाला उबल उबल मटमैला चक्कर खाता बढ़ा हुआ,
जा करके मिल गया नदी से, शोर मचाता चढ़ा हुआ;
धार-विरुद्ध मीन अड़वारी[2] पानी काट, मोद में भर,
डूब डूब फिर फिर उतरा कर क्रीड़ा करती है जल पर;
धानों की क्यारी भर आई, मेड़ बाँध कर रोका जल,
पानी ही में भीग भीग कर कृषक चलाता जाता हल;

१ पक्षी विशेष

२ मछली विशेष

ललना एक धान-क्यारी में मैली-सी पहने सारी,
जिसमें कई रंग के पेवँद से थी की पच्चीकारी;
धानों के कुछ नव पौधों को निज उभरे सीने से दाब,
मानो उनको सींच रही है निज यौवन का दे कर आब।
चलती थी सँभालती तन को करने पर भी लाख जतन,
कई ठौर से मसकी[1] सारी, आभा फूट चली छन छन;
पानी बरस रहा है रिमझिम, भीग रही बेचारी है,
बूँद-बाण के भय से उसके तन से लिपटी सारी है;
अंग अग सब झलक रहा है, लज्जा से सकुचाती है,
धानों के पौधों से ज्यों-त्यों करके देह छिपाती है;
पवन छेड़ कर और सताता, देता केश-राशि लहरा,
मानो ये घन भी नभ पर चढ़ बरसेंगे घहरा घहरा;
क्यारी भरी हुई है जल से मिट्टी खूब बनाई है,
पुष्य-नखत में वृष्टि हुई है, धान रोपने आई है;
एक एक पौधा ले करके झुक झुक उन्हें लगाती है,
मानो मलमल की चादर में बेल काढ़ती जाती है;
हल्की हो कर, निज गोदी के शिशु को क्यारी में बिठला,
मुक्त करों से केशाच्छादित मुख से कुंचित केश हटा;
बैठ किनारे लगी निरखने अपने खेतों की माया,
माथे पर श्रम-बिन्दु तथा जल-बिन्दु मोतियों-सा छाया;

१ फटी

जब उसने देखा निज सम्मुख हरे हरे धानों का कोष,
मधुर उछलते हुए हृदय को मिली शान्ति, आया सन्तोष;
बोली पौधों से—"शिशु प्यारे, क्यों इतने मुरझाये हो,
हरे-भरे थे अभी गोद में, क्यों अब मुँह लटकाये हो?
धैर्य धरो पृथ्वी-मा देगी तुमको गोदी में सुस्थान,
लालन-पालन सदा करेगी वत्स! तुम्हारा एक समान;
भाई पवन झुलावेगा नित, तुझे पालना लोरी गा,
सूर्य-किरण नभ-ओर बुला हिल-मिल तुझसे खेलेगी आ?
गौवें तेरी श्याम घटाएँ; पय से अपना थन भर कर,
दक्षिण के जल-भरे हरे लहराते खेतों से चर कर;
आ करके नित तेरे मुख में बरसावेंगी जीवन-धार,
फिर तुम क्यों अनमने हुए हो, खेलो उठो उठो सुकुमार!
तेरे निकट घास का तिनका भी जो कहीं उठावे सर,
वहीं कलम कर दूँगी गर्दन, नहीं छोड़ सकती क्षण भर;
शीश उठावे कहीं राज्य में, कोई तेरा बागी हो,
खटकेगा मेरे सीने में, नहीं सकूँगी तब तक सो;
नहीं जब तलक विद्रोही की बोटी बोटी दूँगी काट,
निष्कंटक बस राज्य करो तुम, हे मेरे छोटे सम्राट!
तेरी लूँ मैं लाख बलैयाँ, बाल-शाल मेरे धन-धान!
फूलो-फलो, हँसो-खेलो तुम, हरा-भरा रक्खे भगवान!"

रिमझिम

पावस का अब श्रीगणेश है, कौए लगे झाड़ने पर ;
सूखों ने नवजीवन पाया, भरा लबालब जल से सर ;
कोयल ने अपने अंडों को काकनीड़ में चुपके डाल ,
उल्लू बना दिया कौए को अपनी बला और पर टाल ;
अक्ल गई थी चरने, खाई घास, गई थी मति मारी ;
बैठे कोयल के अंडे पर, निकली चालाकी सारी ;
कोयल के बच्चे निकाल कर, चुगा चुगा कर बड़ा किया ,
काँव काँव काले परदे पर, चित्र कुहू का खड़ा किया ;
ब्याज-सहित अब लौट जायगी पिकटोली सब दूर प्रदेश ,
जहाँ वसन्त वाटिका-वन में, घूम रहा हो, बना महेश ;
सारस बगुले हैं प्रसन्न अब, पानी में उभरी जड़ पर ,
बैठे हैं मूरत बन , छाया हिलती पानी पर पड़ कर ;
संध्या ही से लगे सुनाने मच्छड़ आ कर अपनी बीन ,
इधर बीन कर लगी उड़ाने तटगत इनके अंडे मीन ;
बच्चे बचे रहे जो जल में क्रीड़ा करते कीड़ी बन ,
ले कर साँस हवा में दुम से, जल में छिप जाते फौरन ;
उड़ने लगे बड़े हो कर जब, बारह दिन जल में कर सैन ,
घनी घास में चरते ढोरों को डँस डँस करते बेचैन ;

इन ढोरों की पीठों पर बैठा भुजंगे[1] बिलकुल बेडर ,
खुर के खुट खुट से जो चिड्डे[2] उड़ते खा लेता धर कर ;
बढ़ कर नदी घटी जो थोड़ी और चली जो पुरवाई ,
लहरें उठ तट लगीं काटने, हुई करारों की ढाही ;
बड़ी नाव पर धीवर ने सब माल लाद, पतवार सँभाल ,
रोती घरनी छोड़ किनारे, दी नौका धारा में डाल ;
भँवर बचाता हुआ राह में लहरों पर उठता गिरता ,
देश-देश पैसे के लालच रहा अकेले ही फिरता ;
रमते योगी ने भी आसन डाल दिया चौमासा में ,
आँखों में है रात काटती विरहिन पति की आशा में ;
जल बरसे, सरिता-सर उमड़े, उमड़-घुमड़ घन आओ घिर ,
करो हृदय विरहिन का शीतल, पति से मिला, फेर दिन फिर ।

---

१ पक्षी विशेष

२ कीड़ा विशेष (ग्रास-हॉपर–Grass-hopper)

शरद्-आगमन

वर्षा ने अब पंख समेटा, शरदागम दिखलाता है,
कभी कभी संध्या का बादल रँग बरसा-सा जाता है।
यौवन ढल है गया नदी का, उतर गया है पानी भी,
काले बादल श्वेत हो गये, जाती रही जवानी भी।
तिल भर भूमि न नीचे छोड़ी, छत पर भी उग आई दूब,
खपड़ों पर भी लगी लहरने, अपना राज जमा कर खूब।
निज विस्तृत साम्राज्य देख कर मन में नहीं समाई फूल,
फूलदार चादर फैली है वहाँ जहाँ उड़ती थी धूल।
जमा हुआ है जल तालों में, आया था जो वह बह कर,
उछल उछल पड़ती है मछली आ तरंग में रह रह कर।
पत्तों की पतवार बना कर हवा-भरे डंठल पर तैर,
परम मनोहर फूल बैंगनी, करमी[1] का करता जलसैर।
करती है संकेत कुमुदिनी, हिल हिल कर कुछ भाव बता,
मधुमक्खी मिल मिल दोनों से कहती है कुछ गुप्त कथा।
अंचल दे कर वह मुसकाई, यह सुध-बुध भूले सारी,
दर्शनीय घनश्याम - राधिका की है जलक्रीड़ा प्यारी।
गड्ढे जो हैं मैदानों में, वन में या खेतों के पास—
पानी पा कर उग आई हैं, नागरमोथा[2], नरई[3] घास।

१–३ घास विशेष

उस गड्ढे के पास खड़े हैं पीत पुष्प से लदे बबूल,
कंटकमय जिनकी शाखाएँ लटक रही हैं जल पर फूल।
तटवर्ती इस झुकी डाल की जल पर लटकी फुनगी पा,
एक गिलहरी का भी बोझा जो सकती है नहीं उठा;
लगे बनाने किला हवाई ला कर बये[1] चोंच में खर,
एक चतुर शिल्पी सा चुन चुन कोठेदार बनाते घर।
बच्चे अन्दर चैन उड़ाते, आँधी हो या पानी हो,
मन्दिर खूब प्रकाशित रखते ला जुगनू के दीपक को।
खेत धान का फूल चला है, दूध लिया कुछ दानों ने,
मेड़ बाँध कर रोक दिया है पानी चतुर किसानों ने।
सिर पर पहने सुन्दर कलँगी भरा मोतियों से अँग-अंग,
ओढ़े हरा दुशाला, मक्का[2] जमा रहा है अपना रंग।
चोर बहुत हैं इस मोती के, दिन में है चिड़ियों का डर,
रात-समय चक्कर देते हैं साही औ' शृगाल आ कर।
बाँस गाड़ कर उसके ऊपर खटिया बाँधी छप्पर डाल,
मानो कोई बना हुआ है चिड़िया का घोंसला विशाल।
उस पर बैठ किसान बिचारा करता रहता रखवाली,
जहाँ सुना खटका थोड़ा भी, तुरत बजाता है थाली।
आँधी चलती हो जोरों की, जाड़ा हो या पाला हो,
मूसलधार बरसता जल हो, काली निशि अँधियाला हो;

१ पक्षी विशेष
२ अन्न विशेष

पहने एक लँगोटी मैली फटी एक ओढ़े चादर,
काँप काँप कर रात बिताता, नींद भगाता गा गा कर।
उजले सूखे घिसे नखों की अँगुली में ले कर डंट्ठा[1],
हल्ला करके टीन बजाता, पड़ा हाथ में है घट्ठा[2]।
मल कर पीत पराग देह में मधुकर अलख जगाते हैं,
कुम्हड़े[3] नेनुएँ[4] फूल फूल, मिल भँवरों से बतियाते हैं।
हरी घास में हरे हुए चिड्डे जो थे मिट्टी के रंग,
अरि से उन्हें बचाने को है रचा प्रकृति ने कैसा ढंग!
बच्चों को ले घनी घास में मैना घूम चराती है,
लम्बी टाँगों से उछला जब चिड्डा धर खा जाती है।
श्याम सलोनी फुलसुँघनी को कनक-पीत करवीर[5] सुमन—
मोहित मानो कर लेता है, चूम, निछावर करती मन।
चारों ओर छटा अति प्यारी छाई शरद्-जुन्हाई की,
वंशी! क्यों तू मौन हो गई मेरे कुँवर कन्हाई की?
क्या शशिमुखी राधिका ने ले वंशी कहीं चुराई है,
क्या मोहन-सँग रासरंग की सुध उसको नहि आई है?
पूर्ण-चन्द्र है रात सुहानी, दृश्य बड़ा अलबेला है,
वंशी में तू प्राण फूँक दे नटवर यही सुवेला है।

---

१ सूखा डंठल
२ काला तथा कड़ा चमड़ा
३-४ तरकारी विशेष
५ कनेर का फूल

जाड़ा

भू-मंडल ने चक्कर खाया, ऋतु बदली, जाड़ा आया,
अग्निकोण से उगे दिवाकर तिरछी हुई विटप-छाया;
विष को ठंढा करनेवाले, हिम की ऊपर देख उपाधि,
नाग भाग पाताल सिधारे, श्वास चढ़ा कर लगा समाधि।
दिन सिकुड़ा, हिमकण से भीगी रात हुई भारी काली,
पड़ने लगी बर्फ पर्वत पर, श्वेत हुई सब हरियाली।
देख परम निष्ठुर बन जाना, पत्थर हो जाना सर का,
हिम हो जाना उसी हृदय का जिस पर बना सुखद घर था—
चकवा[1], चकई[2], हंस[3], कड़ाकुल[4], पटिहारी[5], टीका[6], घोंघिल[7],
ले निश्वास उड़े नीचे को बार बार सरवर से मिल।
एक एक से पंख मिलाये, उड़ दल के दल, बना लकीर,
अगुआ के पीछे ही पीछे उतरे नीचे सर के तीर।
उड़ उड़ तैर तैर पानी में मछली खाते, चुगते धान,
किन्तु नहीं इस सुख में छोड़ा अपनी जन्म-धरा का ध्यान।
ज्यों ही जाड़े के पर टूटे, पर्वत पर भी बर्फ गली,
त्यों ही इन चिड़ियों की टोली अपने अपने देश चली।
खंजन भी आ गये हिला दुम, चंचल फिरते बिना विराम;
'मगर' ठिठुर हैं गये शीत से, सुबह रेत पर लेते घाम।

१—७ पक्षी विशेष

ऊदबिलाव संग बच्चों के बिल से निकला भूखा-सा,
तड़के ही पानी में कूदा, मछली पकड़ रेत पर ला
बच्चों को जलपान करा कर, जाड़े ही में जल में डाल,
धीरे धीरे अपने ही सा उनको भी है रहा निकाल।
फैल रहा है घना कुहासा, नहीं सूझता मग आगे,
तट सरिता हैं एक हो रहे, नहीं पड़ रहा पग आगे—
जाड़े से बचने को मानो सरिता ने रूई-गाला
अपने ऊपर डाल लिया है, बदन गर्म रखनेवाला।
डालों पर पत्तों में छिप कर, फुला परों को, शीश छिपा,
किसी तरह जाड़ा-पाला खा चिड़ियों ने दी रात बिता;
पौ फटते ही मचा चहचहे पेड़ों की फुनगी पर जा,
पर फटकार धूप लेती हैं सूर्यदेव का स्वागत गा।
वही गिलहरी जो कि निशा में रहीं खोखले में छिप कर
खुले तने पर किसी वृक्ष के, डाल और पत्ते तज कर,
दुम सिकोड़ रोएँ में लिपटीं, प्रथम किरण की गरमी खा
एक एक से सट कर लेटी हुई शीत हैं रही मिटा।
सरदी खा कर रात-समय में लगी लोमड़ी करने शोर,
मानो कहती है पुकार कर, 'खोदूँगी गहरा बिल भोर'।
भिगा दिया नन्हें बच्चे ने बिस्तर को जाड़े में जो,
सूखी जगह सुला कर उसको, गई स्वयं गीले में सो;
जागी सोई उसकी सुध में, जान उसी के ऊपर वार,
कौन उऋण होगा माता से, धन्य धन्य जननी का प्यार!

हाथ बगल में दाबे फिरते हैं ग़रीब बच्चे नंगे,
पेड़ तले चिथड़े में लिपटे मरे शीत से भिखमंगे;
सरदी से था रक्त जम गया, ठिठुर गई थी सारी देह,
रवि ने आ कर जान डाल दी, पहुँचा कर गरमी सस्नेह।
धरती है या नील गगन है, उगा चन्द्रमा है यह क्या,
या अलसी के खिले खेत में बैठी है कोई महिला?
तड़के ही से डाल रहे हैं, गड़हों से खेतों में जल,
पकड़ बाँस की एक टोकरी पति-पत्नी रस्सी के बल।
जल के यों कम हो जाने से व्याकुल हुए मीन जलजन्तु,
बगलों की जमात जुड़ करने लगी निगल कर उनका अन्त।
होने लूटमार में साथी लड़कों की पलटन भी आ
जाड़े ही में लगा लँगोटी जल में कूदी किला बना।
पैरों से कीचड़ उछाल कर, पानी को मटमैला कर
बची मछलियों को भी पकड़ा, ज्यों वे उछलीं घबड़ा कर।
जौ गेहूँ के डाढ़ी आई, छाई है अब तरुणाई,
झूम रहे हैं देख देख कर मटर-फूल की अरुणाई।
बच्चों की है राल टपकती देख ऊख का पिरता रस,
ऊख चूसना नहीं सुहाता, जा पहुँचे कोल्हू पर हँस—
रस पीने को डट कर बैठे नहीं ठंढ की कुछ परवाह,
बुड्ढे भी जा वहाँ जमे हैं, जहाँ आग पर चढ़ा कराह।
बैठ ठिठुरते पैर सेंकते, गये शीत से जो थे भींग,
सुना रहे हैं कथा पुरानी, मार रहे हैं झूठी डींग।

गरम चासनी का रस लेते, देख आँच होती कुछ कम ,
पत्ते डाल डाल चूल्हे में आग तापते हैं बे-गम।
भीगी रात, कामिनी कोई जो वियोग में रोती है ,
जाड़े से जिसका आँसू जम बना हार का मोती है।
"पाला पड़ा निठुर से ऐसे" व्याकुल हो बोली बाला ,
"फूली थी मैं जिस आशा में, हाय, पड़ा उस पर पाला।
जो ऐसे जाड़े-पाले में अपने प्रियतम को पाती ,
गर्म गर्म आँसू से अपने, उनके पग को नहलाती।
शीत पवन ! उनको लेता आ, मानूँगी तेरा उपकार ,
चाहे फिर ठंढा कर देना, हो जाने दे आँखें चार।"
चला पवन, बादल घिर आया, कुछ कुछ पड़ने लगी फुहार ,
आँख लगाये रही द्वार पर किसे सुनाती मूक पुकार !

संध्या

अंगारे पश्चिमी गगन के झँवा झँवा कर छार हुए,
निर्झर खो सोने का पानी पुनः रजत की धार हुए।
रश्मिजाल से खेल खेल कर आँखमिचौनी तरु-छाया
सोने चली गई दिनपति-सँग, बिलग नहीं रहना भाया।
दिन भर जो चुगती फिरती थी विहगावलि उड़ इधर-उधर,
करने लगी बसेरा तरु पर धन्यवाद प्रभु को दे कर।
केवल एक काक का जोड़ा अभी बहुत घबड़ाया-सा,
उड़ता हुआ चला जाता है धुँधले में काँ काँ करता।
नहीं बसेरा अभी मिला है, पता न चलता काले में,
एक एक तरु देख रहे हैं ऊपर से अँधियाले में।
पिछड़ गये थे खाने में कुछ नभ-पथ में आते आते,
इसी लिए वायस बेचारे सनसन हैं उड़ते जाते।
दम साधे सब वृक्ष खड़े हैं, पत्तों की रसना है बन्द,
आती है विभावरी रानी खोले श्यामल केश स्वच्छन्द।
मधुप कुसुम से बात न करते, तितली पर न हिलाती है,
निद्रा सबकी आँख बन्द कर परदा करती जाती है।
कमलावाहन बना सन्तरी, तुरत डाँटता आँख निकाल,
रजनीगन्धा की कलिका जो चिटकी कहीं फुला कर गाल।

तारे नदी-सेज पर सोये, थपकी देने लगी लहर,
रुँधा गला मोथा सिवार से, सरिता का धीमा है स्वर।
कटे करारे से लटकी है गाँठदार कुश-तृण की जड़,
मन्द पवन में भी जो हिल कर करती है खड़खड़ लड़लड़।
अँधियाले में नाव जब कभी रेते पर जाती है टिक,
जड़ें पकड़ कर ज़ोर लगाता, गोन लिये बढ़ता नाविक।
पाँव टिटिहरी के अंडे पर उसका है पड़ जाता जब,
आसमान को सिर पर लेता उठा, शोर कर टिट्टिभ तब।
दूर ग्राम से भों भों की ध्वनि, पास खेत से हुआँ हुआँ,
शान्ति-भंग करता है रह रह, फैल रहा सब ओर धुआँ।
एक चिता की क्षीण ज्योति में मूर्च्छित है कोई उस पार,
धूमिल दृश्य हुआ सब तट का, अन्धकार उसका संसार।

निशा

दिशा फूली निशा के आगमन में,
लगे हैं झाँकने उडुगन गगन में।
मलय ने आ कली को गुदगुदाया,
लिपट कर खूब जूही को हँसाया।
बिछी थी शंखपुष्पी की जो माला,
था जिसके मोतियों का शुभ उजाला,
अँधेरे में निशा के चोर से डर,
बटोरा मोतियों को बहु जतन कर;
सवेरे हार फिर उनका बनेगा,
प्रकृति की माँग में मोती टँकेगा।
कमल भी सो रहा है मुँह छिपाये,
विटप लतिका हैं सोती सर झुकाये।
सिरस[1] इमली[2] औ' चकवड़[3] आदि थे जो,
सिकोड़े अपने पत्तों को गये सो;

१-२ वृक्ष विशेष

३ घास विशेष

सभी पर नींद का धावा कड़ा है,
नदी नालों में भी सोता पड़ा है।
विहगवर पंख में सर को छिपा कर,
हैं डूबे नींद में डाली पै जा कर।
जो चरवाहा है बंसी को बजाता,
लिए ढोरों को वन वन है चराता;
निरख कर शस्य श्यामल का बिछौना,
है फूला जिसमें रजनीगन्ध[1] दौना[2],
गया पड़ दूब[3] पर तबियत हरी की,
निरखता छवि है लोनी[4] सुन्दरी की।
ढला दिन देख कर वह घर को आया,
चिलम पी, ढोर को चारा खिलाया।
कृषक ने हल को छोड़ा बैल हाँका,
चला घर, दूर से बच्चों ने झाँका;
गये वे दौड़ लिपटे सब बदन से,
निरखती गेहिनी भी थी सदन से;
दरस पा दौड़ जल गडुए में लाई,
धुला कर पाँव नहि फूली समाई;
स्वपति के तन की सारी मैल धोई,
परोसी प्रेम से सादी रसोई;

१—२ फूल विशेष
३—४ घास विशेष

निशा का पी निशा सब सो गए बस,
　　　　　　परस जिससे हुआ है तेरा पारस,
उधर सोना ही बस सोना पड़ा है,
　　　　　　तेरा मद सबकी आँखों में चढ़ा है!

आकाश

सुन्दर श्वेत अलभ्य मोतियों का रत्नाकर,
अति चंचल दृग-मृग-कुलाँच-सीमान्त मनोहर,
प्रकृति-देवि के अनुपम तन का प्रिय नीलाम्बर,
मम पुतली की कलित केलि का क्रीड़ा स्थलवर,
  सुन्दर मंडप मध्य है माया नाटक खेलती,
  अभिनय दृश्य दिखा दिखा श्वेत श्याम पट मेलती।
प्रातः में ऊषा जागी लेती जमुहाई,
किसी स्वप्न का ध्यान, हुए रह रह पछताई,
मनोहारिणी मूर्ति पुनः नहि पड़ी दिखाई,
रोते रोते आँखों में छाई अरुणाई,
  वन-उपवन, पर्वत-शिखर, मन्दिर, सरिता, गिरि, गुहा,
  देख देख भटकी फिरी, आँसू चार गिरा-गिरा।
लगी दिखाने नियति चित्ररेखा तब आ कर,
सकल विश्व का मनो-मुग्धकर चित्र बना कर,
बैठ झरोखे लगी देखने ऊषा सादर,
मनमोहन का पता लगाने को धीरज धर,
  सुन्दरता देखी बड़ी, चोर न चित का पा सकी,
  हो मलीन पीली पड़ी शान्ति न मन में ला सकी।

मेघ-फिल्म संचालित कर वर वेश बनाये,
इन्द्र-जाल रच पट पर अगणित दृश्य दिखाये,
बाग तड़ाग विहंग कुरंग रचे मन भाये,
उष्ट्र चला, सुन्दरी नचा, घोड़े दौड़ाये,
अति विशाल पर्वत-शिखर, सूर्य-किरण निर्झर झड़े,
करिवर कज्जल-कूट से, दौड़-दौड़ हिल-मिल लड़े।

झूम झूम घनश्याम लगे नव रस बरसाने,
पवन हिंडोला झूल तड़ित-कुंडल चमकाने;
घहर घहर कर लगे अपूर्व निसान बजाने,
स्वागत-फाटक विरच वितान मनोहर ताने,
सप्त रंग की चूनरी, लिपटी मिली सु-अंग से,
चपला मिल घनश्याम से श्यामा बनी उमंग से।

ऋषि मुनियों से भरा अलौकिक ओक निहारा,
मातु जाह्नवी की देखी अति निर्मल धारा,
सप्त ऋषी कश्यप अगस्त प्यारा ध्रुवतारा,
पावन ज्योति पसार बने हैं लोक-सहारा,
नील अम्बुनिधि में अहा शंख-पद्म-से हैं कलित,
लगा अंक में शून्य को बन अनन्त करता चकित।

ओस

मोती मुझको बतलाते हो, वह कठोर है, नहीं मृदुल ,
द्रवित हृदय-सी मैं सरसा हूँ, नव पल्लव से भी कोमल ;
आती हूँ नभ से मैं प्रतिनिशि जाता रवि जब अस्ताचल ,
गा कर नीरव गीत नाचती—बन अप्सरा-सदृश चंचल ।

भू पर तुरत लोट जाती हूँ, पवन छेड़ ज्यों ही करता ,
मचल गई तो मचल गई मैं, उठती है फिर कौन भला ?
मुझे आबरू है बस प्यारी, पानी है मुझको रखना ,
गले-गले औ' गली-गली बन हार नहीं मुझको फिरना ।

श्यामल शस्यों पर मैं लेटी, विहरी सुन्दर फूलों में ,
कोमल नव पल्लव पर चमकी, लसी नदी के कूलों में ;
मुक्ता बनी कभी तुलती हूँ, काँटों में अनुकूलों में ,
चन्द्र-किरण-सँग कभी झूलती वल्लरियों के झूलों में ।

पड़ी देख मुझको निद्रा मे ऊषा मुझे जगाती है ,
सप्त रंग की विमल चूनरी सूर्य-किरण पहनाती है ;
रंगों मे मैं भरी चमकती, दुनिया लख ललचाती है ;
ऊषा मुझको नभ-मंडल में संग उड़ा ले जाती है ।

फिर भी मैं विहार करने को नित्य स्वर्ग से आती हूँ,
कुंजों में कुछ रात काट कर तारों-संग छिप जाती हूँ;
तुम कठोर हो मुझे न छूना यही सोच मैं रोती हूँ,
किन्हीं सजल आँखों से निकली मैं उज्ज्वलतम मोती हूँ।

वन-विहार

मनुज-मंडली की माया से मन मेरा घबड़ाया,
मायावी-लीला का नाटक मुझको तनिक न भाया ;
कृत्रिमता की बात बात में फिरती देख दुहाई,
नैसर्गिक शोभा लखने की धुन-सी मुझे समाई ।
जो छल-बल से काम निकालें, सच के पास न जावें,
नवशिक्षित समाज में वे ही सभ्य कुशल कहलावें;
मुँह में राम बगल में छूरी, खूब बनाते बातें,
समय पड़े पर कभी न चूकें, करते गहरी घातें ;
टट्टी में शिकार करते हैं, रक्खें लम्बी डाढ़ी,
अबलाओं पर हाथ साफ़ कर, करें मित्रता गाढ़ी ;
पापी को कुछ दंड न देकर क्षमा दया दिखलावें,
ऐसे भीरु वीर कहलावें, ऊँची पदवी पावें ।
धर्म, समाज, चरित्र, देश की देख दीनता भारी,
घबड़ा कर तब मेरे राम ने की वन की तैयारी ;
पशुओं के सहचर होने की जी में बात समाई,
इन सभ्यों की कपट-नीति से उनकी पशुता भाई ।

× × ×

देखूँगा स्वच्छन्द प्रकृति की वन में सरस लुनाई,
नैसर्गिक नियमों में जिसके बाधा तनिक न आई ;

नहीं छूत है काट-छाँट की वन की फुलवारी में,
प्रकृति-सुन्दरी 'साया' तज कर चमक रही 'सारी' में।
हिरन विचरता हो चरता हो बे-पट्टे-डोरी के,
झरने लहराते हों मानो मुक्त केश गोरी के।
मन में ऐसा चित्र खींच इन मित्रों से घबड़ाया,
पावन-प्रकृति-देवि के सुन्दर रम्य कुंज में आया।
रस में भरी ललित लतिकाएँ तरु से लिपट लिपट कर,
फूल रही थीं झूल झूल कर नव उमंग में भर भर।
सलिल-वक्ष से कमल-कली उठ यौवन लगीं दिखाने,
मधुकर लोट लोट बलि जा कर वंशी लगा सुनाने।
ताल ताल दे जल-तरंग में सरगम लगे बजाने,
झिल्ली झूमर और दादरा दादुर लगे सुनाने।
राग हिंडोल, डाल-झूले पर झूल खगों ने छेड़ा,
जल-मृदंग पर राजहंस ने पर से दिया थपेड़ा।
निशि में जलज-अंक में सोये मधुकर प्यारे प्यारे,
शशि को ताल-अंक में लख कर टूट पड़े सब तारे।
चक्कर दे दे तारात्रों ने खूब सितार बजाया,
तितली नाचीं, भोर भ्रमर ने गुन गुन गुन गुन गाया।
प्रकृति-सुन्दरी ने मृगछौनों से जो आँख मिलाई,
गये चौकड़ी भूल टूँग कर, घास नहीं फिर खाई।
मत्त मतंग छिपे पानी में अपनी सूँड़ निकाले,
कमल नालयुत तोड़, उड़ाते मधुकर काले काले।

वट-अवरोह[1] लटकी है मानो मुनि हैं जटा बढ़ाये,
लाल लाल फल की मालाएँ मानो हैं लटकाये।
रंग रंग के पक्षी उस पर करते हैं रँगरलियाँ,
रसिक मधुप की छेड़छाड़ से चिटक उठी हैं कलियाँ।
प्रकृति-सुन्दरी उर्मि-ताल पर नाच उठी ता-थैया,
हृदय हमारा लगा थिरकने ले कर लाख बलैया।
जो सुख खोज खोज कर हारे सांसारिक जीवन में,
परमानन्द परम रस पाया वही प्रकृति के वन में।

---

१ बरगद की जटा

मान-लीला

गाल फुलाये हैं क्यों फूल ?
तन से लिपटी है क्यों धूल ?
मुँह लपेट कलिका क्यों सोई ?
ओस बिखर करके क्यों रोई ?

हरी-भरी क्यों रही न दूब,
मुँह लटका हिमकण में डूब ?
फूट-फूट क्यों रोये बाल,
रूठ-रूठ क्यों बैठे लाल ?

मचल चाँदनी लोट रही है,
मटकी क्यों-क्या चोट सही है ?
पटक दिया सर ने सर क्योंकर,
कमल-नयन क्यों जल से है तर ?

फाड़ा केले ने क्यों आँचल,
गिरे पड़े धरणी पर हैं फल ?
काँटे में है फँसा गुलाब,
कँपा बेंत क्यो बन बेताब ?

पत्ते क्यों सूखे जाते हैं ?
क्यों सब बेलें बल खाते हैं ?
लहर सिकोड़े है क्यों माथ ,
क्यों मन बिगड़ा हो बे-हाथ ?

हुई पवन से खटपट आज ,
गया इसी से बिगड़ समाज ;
गिर गिर पाँव मनाता ज्यों-ज्यों ,
लोट लोट पड़ते सब त्यों-त्यों ;

विनय न कोई करते कान ,
सब बैठे हैं करके मान ;
रची पवन ने तब यह माया ,
मित्रों को प्रिय पाठ पढ़ाया ;

बीन बजाते आये मधुकर ,
जल-तरंग सुन नाचे तरुवर ;
लगे ताल देने सब ताल ,
बजा सरंगी औ' करताल ;

अंचल मुख पर डाले आई ,
रख लाली ऊषा मुसकाई ;
लगे विहग गाने प्रिय गीत ,
होने लगा मधुर संगीत ;

फूल भूल कर अपना मान,
सुनने लगे मनोहर तान;
दूब खूब हँस हँस कर लोटी,
बाल सजा कर गूँधी चोटी;

फड़क उठी सरिता की छाती,
कलित बनी कदली की पाँती;
बिहँस उठी पंकज-माला खिल,
तितली भाँवर भरती मिल मिल;

मनमोहक स्वर सुन कर अलि का,
उठीं खिलखिला प्यारी कलिका;
गया रंग में रँगा गुलाब,
बेलें पर चढ़ आई आब;

पत्तों ने हिल हिल दी ताली,
पृथ्वी पर छाई हरियाली;
बेंत अचेत चेत में आये,
फिर तो फूले नहीं समाये;

छेड़ छेड़ था जिन्हें खिझाया,
रंग-ढंग से उन्हें रिझाया;
लगी धूल को हवा बता कर,
मन की सारी मैल छुड़ा कर;

प्रेम-रंग में बना विभोर,
लगा मनाने वह चितचोर;
राग-रंग में मोहित पा कर,
उर लग लग कुछ कुछ चिटका कर,

छिप छिप लता-कुंज में झटपट,
खोल खोल कलियों का घूँघट;
जल-क्रीड़ा कर कमल-संग में,
डूब डूब छिप छिप तरंग में;

कलित केलि कर हँसा हँसाया,
मना मना कर मान हटाया;
डाल मोहिनी रच कर माया,
वांछित फल समीर ने पाया।

फूल

डाली पर डाला झूला,
सुख से मन मेरा फूला;
पड़ी प्रेम की थी डोरी,
मधुप सुनाते थे लोरी;
रस-सुधा सुधांशु पिलाते,
नित भरी कटोरी लाते;

मुख प्रात ओस से धो कर,
जब उठा सवेरे सो कर;
ले गोद मोद में भर के,
रज झार प्यार भी करके,
ऊषा तितली-सँग आई,
मुख चूम-चूम मुसकाई!

काँटा

खटक रहा हूँ मैं तो सबको अजब फँसा हूँ काँटे में,
देख उलझना सबका मुझसे मैं हूँ इक सन्नाटे में;
'रेंगनी'[1] हूँ मैं फूल हमारा शोभित सुन्दर ललित सुनील,
तारों की है मेख गगन में यहाँ लगी सोने की कील;
खड़ा खड़ा कोमल पत्तों की करता मैं रखवाली हूँ,
नंगी भू का मैं भूषण हूँ जंगल की हरियाली हूँ,
मैं 'घमोय'[2] हूँ, कनक-कटोरा भरा ओस से ले ले कर;
सूर्यदेव को अर्घ्य चढ़ाता हूँ वन वन में प्रतिवासर;
लोभी जीव न हाथ लगावे बस भर मैं अड़ जाता हूँ,
पाँव बढ़ा तो चुभ जाता हूँ, हाथ बढ़े गड़ जाता हूँ,
मैं गुलाब हूँ फूल हमारा सारे जग को है प्यारा,
फूल-मूल की धूल न होती, होता जो नहि रखवारा,
काँटे के सिर फूल हजारों चढ़े हुए तुम पाओगे,
लग जाऊँगा किसी अंग में तोड़ अगर बिलगाओगे;
मानवती कर मान सजन से वन की राह जो लेती है,
विह्वल प्रियतम की विनती पर ध्यान नहीं जो देती है,

१—२ काँटा विशेष

मैं ही गुप्त सहायक हो कर प्रेमी का देता हूँ साथ,
पग में लगते ही रुक रुक कर सी सी कर कहती है नाथ;
आँचल पकड़ उलझ जाता हूँ जब लिपटा उसका प्रिय चीर,
इधर सुलझती उधर उलझती निकल न पाती हुई अधीर;
अकस्मात जब मुँह से कहती प्यारे! कंटक दूर करो,
सुलझाओ मेरी सारी को, मुझे बचाओ बाँह धरो;
तब प्रीतम जो साथ साथ ही छिपा हुआ सा आता था,
सोच सोच उसकी उलझन को मन ही मन अकुलाता था;
सुन कर करुण पुकार उसी ने उसे लगाया सीने से,
सुलझा कर प्रिय वस्त्र सँवारे अँगिया भरी पसीने से;
मेरे इन उपकारों का मुझको है मिलता क्या उपहार,
जिधर देखिये उधर हमारा ही सब करते हैं संहार;
न्यायी प्रेमी सोच बताओ अब भी हो मेरे प्रतिकूल!
नहीं, रसिक यह मान चुका है—काँटा तुम हो उसके फूल।

चमेली

अरी चमेली घूँघट खोलो रसिक भ्रमर को मिल जाने दो,
अधरामृत का चुम्बन करके फूलो ही सा खिल जाने दो;
हा हा करे पवन कितना ही उसे निकट तुम मत आने दो,
सूर्य-रश्मिमालाओं को भी दमक दिखा कर फिर जाने दो;
क्यो न चन्द्रिका भू पर लोटे, किन्तु उसे मत रस पाने दो,
विहग-वृन्द बलि जावे तो क्या बोल बोल कर बल खाने दो;
लाख सितारे चमकें दमकें, जग-जग रात बिता जाने दो,
साज गोल तितली के आवें गोली हिम की खा जाने दो;
नहीं किसी की ओर देखना सारी पृथ्वी हिल जाने दो,
चतुर चमेली केवल अपने रसिक भ्रमर को मिल जाने दो।

वृक्ष

पी पी कर समीर-रस तट पर एक वृक्ष है भूल रहा,
रूप देख सरिता-दर्पण में गर्व-सहित है फूल रहा;
पावस में वारिद्-बाणों को अपने सर पर लेता है,
सरिता पर फैली डालों से मोती बरसा देता है।

जड़ का प्रेम-पाश फैला कर जल में डाला उसने जाल,
चंचल चितवाली तटिनी भी मौज उड़ाती चलती चाल;
थोड़े दिन तक इन दोनों ने अच्छी दिखलाई रस-रीति,
तरु तन-मन दे मुग्ध हुआ था, नदी रही दिखलाती प्रीति।

नदी प्रेम करती थी तरु से, पग उसका नित धोती थी,
घंटों लिपट लिपट छाया से मौज उड़ाती सोती थी;
था तरु भी उसका सहवासी, मुग्ध कभी हो जाता था,
बाहु-पाश से आलिंगन कर फूला नहीं समाता था।

पर जब हवा लगी दुनिया की, चंचल चित ने भरमाया;
आँखें लड़ीं और छैलों से, अन्त पवन पर मन आया,
अवसर पा कर हुआ निछावर मलयानिल, कर प्रीति नवीन,
धीरे धीरे उस मुग्धा का लिया चातुरी से मन छीन।

पवन-संग क्रीड़ा होती है, अब रस-रीति अनूठी है,
नव समीर पर मन आया है, वृद्ध वृक्ष से रूठी है;
दोनों की इस गुप्त प्रीति का तरु को पता गया जब चल,
पत्तों से तब किया इशारा, पत रखना, मन है चंचल।

नदी सिकुड़ कुछ गई लाज से, बिगड़ी हवा नवानिल की,
पानी पानी उभय हो गये, बात रही दिल में दिल की;
लगा खटकने तरु काँटा-सा, नहीं सके अरमान निकाल,
कैसे निकल जाय यह काँटा, लगे सोचने दोनों चाल।

पवन चढ़ा लाया सरिता को चढ़ा धार पर उसकी सान,
जो हो चुकी कई की नारी, उसे धर्म की क्या पहिचान?
आज उसी अति-तरल-हृदय सरिता को मैं पाता हूँ जड़,
वह कठोर हो काट रही है, बन कुठार उस तरु की जड़।

जिस चपला का, नीच वासना पूरी करना, है उद्देश,
निज हित का साधन करने में नहीं उसे संकोच विशेष;
अस्तु, इसी विधि पवन-प्रेम से नदी हुई कर्तव्य-विहीन,
पूर्व प्रणय तरु का वह भूली, हो कर पवन-ध्यान में लीन।

मिट्टी लगी चाटने सरिता, झोंका देने लगा पवन,
मुग्ध पुजारी-सा तरु फिर भी रहा चढ़ाता सरस सुमन;

लहर उठी आँधी आई जो, ले बैठी सारा ही पेड़,
डाल दिया पानी के अन्दर, इक झोंके ने उसे उखेड़।

सब पत्ती उड़ गये त्याग तरु—पनडुब्बी का इक जोड़ा
उड़ा—घोंसले में बच्चों को लेकिन चिल्लाते छोड़ा;
गिरा घोंसला वृक्ष-संग ही, बच्चों ने गोता खाया,
छू छू बच्चों को पानी में जोड़ा उड़ता दिखलाया।

अंडा तोड़ अभी निकले थे, नहीं निकल पाये थे बाल,
ओले पड़े मुड़ाते ही सर, उन बच्चों का आया काल;
नहीं उड़ सके, प्राण उड़ गये, गिरते ही उस तरु के साथ,
पानी पी कर बेचारों ने निज जीवन से धोया हाथ।

व्याकुल बच्चों ही के ऊपर मँडराते उनके माँ-बाप,
पानी पी पी कोस रहे थे, सरिता को मानो दे शाप;
वृक्ष बह गया प्रेम-धार में, हुआ प्रणयिनी-हित बलिदान,
बड़े प्रेम से फूल चढ़ा कर प्रिया-अंक में त्यागे प्राण।

भँवरे-सा रस लूट पवन तो चला गया छल कर बाला;
अब क्या पटक पटक सर रोती है, सरिते! क्या कर डाला;
तेरा नदी-कूल सूना है, कहाँ घनी वह छाया है,
नहीं किसी ने आज अंक में तेरे पुष्प बिछाया है।

दर्पण का मुख सूना-सा है, है प्रतिबिम्ब-शून्य पानी,
किस डाली पर उजियाली में झूलेंगे राजा-रानी ?
कल ध्वनि नहीं सुनाई देती अब विहंग के गानों की,
स्वर-लहरी अब नहीं गूँजती, प्रिय कोकिल की तानों की।

अब समीर पत्तो में लग कर नहीं राग उपजाता है,
मधुकर-दल हिलमिल फूलों से नहीं पराग गिराता है;
खेल रही थी जिसकी मूरत निशिवासर तेरे मन पर,
आज उसी की छाँह तलक भी नहीं दिखा पाती क्षण भर।

पावेगी विश्राम कहाँ अब मेरी अभिलाषा की नाव,
क्रीड़ा में अब किस डाली पर झूला झूलेंगे मम भाव ?

मृगछौने !

'माँ माँ' क्यों चिल्लाता है तू मृगछौने, हो हो चंचल,
तुझे गोद में ले चलती हूँ, बचा धूप से, दे अंचल।
पाँव अभी नन्हे नन्हे हैं, कोमल तेरा अभी वदन,
नहीं सहज ही चल पावेगा, मुझे घूमना है वन-वन।

धूप प्रखर औ' पथ है लम्बा, गौएँ हैं सब द्रुतगामी,
पैर मिला क्या चल पावेगा, हो कर उनका अनुगामी?
बच्चे प्यारे मत घबड़ा तू, माँ तेरी सँग आती है,
हरी घास को देख राह में वह खाने लग जाती है।

तुझको भी मैं नदी-तीर पर कोमल कोमल दूर्वा-दल,
मिट्टी झाड़ झाड़ अंचल से खूब खिलाऊँगी, चल चल।
खूब उछलना, खूब कूदना, आने दे सरिता का कूल,
दूब-संग में खूब टूँगना भृंगराज, दुधिया का फूल।

किन्तु निकट मत जाना सरि के, बिलकुल खड़ा करारा है,
पानी है अथाह, जलचर हैं, प्रखर बहुत ही धारा है।
प्यास लगे तो मुझे बताना, मैं तुझ पर जाऊँगी वार,
अंचल भिगो भिगो कर अपना तेरे मुँह में दूँगी गार।

संध्या-समय बहक मत जाना, दुष्ट भेड़िये और सियार,
सदा घात ही में रहते हैं, कब छोड़ेंगे देख शिकार।
धौरी, कबरी, गंगा, यमुना और सभी गायें ले कर,
विहग बसेरा जब लेवेंगे, मैं भी लौट चलूँगी घर।

जाते जाते डूब जायेंगे दिनकर, छिटकेंगे तारे,
मानो श्वेत भेड़ के बच्चे चरते हों प्यारे प्यारे।
तेरी राह देखते होंगे वृद्ध पिता-माता घर पर,
तुझे थिरकते देख लौटते, गोद उठा लेंगे बढ़ कर।

पुंडरीक से सुरभित सर में, आतप में, नहलाऊँगी,
शीत-काल में वृक्ष-डाल पर चढ़ कर घास खिलाऊँगी।
जाड़े की निशि में मृगशावक काँपेंगे वन में थरथर,
अपने साथ उढ़ा कर कंबल तुझे अंक में लूँगी भर।

जब उठ कर छलाँग मारेगा, बोलेगी घंटी टुनटुन,
हृदय हर्ष से नाच उठेगा तब मेरे मुन्ना! सुन सुन—
तुझे पिन्हाऊँगी नित माला कलियाँ वन से ला ला कर,
सो जा मुन्ना! निँदिया आ जा, सो जा, मत तू माँ माँ कर।

नीलकंठ

व्योम में पंख हिलाते जब,
श्यामता में मिल जाते तब;
हवा में ऊपर-नीचे जा,
अंक तुम देते कौन बना?

वीररस के तुम ही अवतार,
नहीं तुमको विलास से प्यार;
तुम्हें भाती है सूखी डाल!
उसी पर बैठ फुला कर गाल—

झपटते नीचे देख पतंग,
उसे मुँह में रख ज्यों बजरंग,
बैठ कर डाली पर झूले,
कभी उड़ते फिरते फूले।

ठूँठ है खड़ा खेत में ताड़,
गया है गिर पत्तों का झाड़;
उसी का तना खोखला कर,
बनाता है अपना कोटर।

ढूँढ़ कर अथवा वृक्ष रसाल,
छेद कर जिसकी सूखी डाल;
कीड़ियों का कर अनुसंधान,
किया कठफुड़वे ने जलपान;

ऐसे ही छेदों को चुन कर,
बनाते हो तुम अपना घर।
छेड़ने जो कौए आते,
ताक में अंडे के जाते,

उन्हें तुम दौड़ा कर भरपूर,
मार कर चोंच भगाते दूर;
नाम भी तेरा है सुन्दर,
दरस भी तेरा है सुखकर।

समझ कर नीलकंठ शंकर,
विजयदशमी के अवसर पर,
सवेरे ही उठ कर सब लोग
ढूँढ़ते दर्शन का संयोग।

पक्षियों में तुम हो घनश्याम,
दिखाया करो रूप अभिराम।

अग्नि-पक्षी

नव वसन्त या ग्रीष्म शरद हो, काली निशि या शुभ्र प्रभात,
तिनका एक नहीं हिलता हो या वहता हो झंझावात—
नगरों की कृत्रिम शोभा से, नभ-चुम्बी महलों से भाग,
वन की कंटकमय झाड़ी से कौन सुनाता है प्रिय राग ?

मानो मधु-वर्षा करता है, कोमल कंठ मनोहर स्वर,
ताल-सुरों में वोल वोल कर रस से विश्व रहा है भर ?
यहाँ नहीं मूरत है कोई और न कोई देवस्थान,
कहाँ, कौन यह मुग्ध पुजारिन सुना रही है मीठी तान ?

कोमल स्वर है हृदय-विमोहक, टीसभरा परिताप विलाप,
तिरस्कार कर किसी निठुर ने क्या उपजाया है सन्ताप ?
हृदय टूटने से प्रेमी के, वन में अथवा लिया विराग,
ढूँढ़ चतुर्दिक जिस प्रियतम को विरहिन लगा रही है आग।

× × × ×

यह क्या उड़ी घनी झाड़ी से, परी इन्द्रपुर की है क्या,
उड़ा किसी का प्राणपखेरू, विरहिन आज मरी है क्या ?
हंसवाहिनी निज वाहन ले वीणा-संग सिधारी है,
आँखों के परदे में आ कर छिपी कौन सुकुमारी है ?

किसने कहा कान में मेरे, इस विहंग का नाम अगिन,
अगिन और ये कुंज लहलहे, कैसे हो सकता मुमकिन !
विरहानल किस वन में व्यापा, कौन जला जाता प्रिय बिन;
कैसा है अद्भुत रहस्य यह, मूर्तिमान क्या हुई अगिन ?

ठहर ठहर तू कोयल मत बन—जो वसन्त भर रख अनुराग,
फिर विहार करने चल देती, दूर देश में मुझको त्याग।
मेरे ही सँग तू दुख-सुख सह, लूटा यदि वसन्त का रस,
तो पतझड़ में भी नंगी डाली पर फूल खिला हँस हँस।

पिक तो श्याम निठुर निर्मोही गया द्वारका हमें बिसार,
अगिन ! राधिका-संग इसी भू पर तू जल जल होना छार।

नदी

हृदय में जो बसी है शैल-वन के,
सजी है फूल की माला पहन के;
उसी सरसी की यह तटिनी है बाला,
सरस पय है पिला कर उसने पाला;
पवन के दोल पर झूली सलोनी,
कभी तारों से खेली आँख-मिचौनी;
पहन आबेरवाँ सारी लहरदार,
किनारा बेल-बूटों से तरहदार;
कभी किरनों के सँग में नाच आई,
कभी फूलों के सँग में मुसकराई;
सिवारों से कभी खेली औ' लिपटी,
कभी मछली के सँग उलझी औ' झपटी;
बढ़ी चढ़ती गई निज तन पसारा,
युवापन की हुई कुछ तेज धारा;
तरंगों ने उसे उठ उठ नचाया,
बहुत चक्कर भँवर ने भी खिलाया;
लखी हिमगिरि ने उसकी यह अवस्था,
लगा तब ब्याह की करने व्यवस्था;
करा पाणिग्रहण तब मन्त्र-द्वारा,
बना जलनिधि को उसका प्राण-प्यारा;

विदा बस कर दिया आँसू बहा कर,
सहेली और माता से छुड़ा कर;
सहेली साथ-खेली छूटने से,
सरस माता का नाता टूटने से;
नदी बेकल हुई पड़ता न था कल,
बहाती ही रही आठों पहर जल;
कभी उठ उठ के पर्वत को निरखती,
कभी कर याद माता की बिलखती;
कलेजा करके पानी थी बहाती,
दरक जाती कभी उसकी थी छाती;
पकड़ लेती कभी थी पेड़ की जड़,
कभी तट-वट से कहती पाँव पड़ पड़;
छिपा लो निज जटा के जाल में धर,
तुम्हीं हो जाओ मेरे आज शंकर;
किसी युवती को देखा जो नहाते,
बिलख कर जल में लोचन-जल गिराते;
तो कहती क्या सखी जाती हो ससुराल,
जो इतना हो रही हो हाय! बेहाल;
छुटे माता-पिता घर जन्म-भू भी,
वह वन-उपवन कभी जिनमें थी घूमी;
हमारी छिन गई वह मौज सारी,
पड़ा जीवन में अन्तर अब है भारी;

जो देखा हंस को जाते सरोवर,
तो रो कर प्रेम से प्रतिविम्ब धर कर
कहा, सरसी पुनः हमको दिखाओ,
अकेले तुम सरोवर को न जाओ;
जो सारस हो तेरा सरसी को जाना,
सरस हो, साथ ले, मत कर बहाना;
अरे चाहा! मेरा सुख कुछ भी चाहो,
तो कुछ संदेश ले कर तुम विदा हो;
जो देखा यों ठिठकते हिचकिचाते,
बहुत भयभीत हो कर पग बढ़ाते;
मिलीं दो-एक सरिता और आ कर,
मिला कर ले चलीं समझा बुझा कर;
बहुत दिखला के ऊँचा और नीचा,
उसे बहला के पति की ओर खींचा;
निकट आ सिन्धु लख कँपती दिखाई,
ठिठक-सी कुछ गई, सकुची, लजाई;
सकुचते देख बढ़ आया पयोनिधि,
मिलन की करके तैयारी भली विधि;
निछावर करके मोती मंजुल प्रवाल,
बहुत मणि-माणिकों से साज कर थाल;
सखी के संग में डोला उतारा,
हुई मिल एक ही दोनों की धारा।

अन्धा कुआँ

आँख लगी थी जिस पर सबकी, आज हुआ वह अन्धा है,
जीवन दे जो श्रम हरता था, भूल गया निज धन्धा है।
टूटी पड़ी जगत है उसकी, जगत टूटता था जिस पर,
भूरि भूरि था जिसे सराहा, गया आज वह रज से भर।

कभी न टूटा तार धार का, ऐसा जगता - सोता था,
देख विपुल जल-राशि मेघ भी पानी भर भर रोता था।
गर्मी में बाजार गर्म था जहाँ पिलाने का पानी,
आज हुआ है ठंढा सब कुछ मगर नहीं ठंढा पानी।

लोग जहाँ भरते थे पानी, आज वहीं भरते हैं आह,
आते हैं जो बड़ी चाह से, पाते हैं वे सूखा चाह।
जिसके तट पर तरु के नीचे पथिक बैठ सुस्ताते थे,
शीतल जल पी करके जिसका शीतल हो सो जाते थे।

उस तरु की जड़, प्यास जगे पर, कूएँ के भीतर जा कर,
लटकी ही रह गई सुधा-रस-सम न सरस जीवन पा कर।
लोना लग लग खाता जाता है जो हैं सेवर ईंटे,
खोद खोद मिट्टी निकाल कर बना रहे हैं बिल चींटे।

नीचे बैठा है इक मेढक, कभी कूद जो आया था,
जिसके पानी की दुनिया का अन्त न उसने पाया था।
आज वही मिट्टी में बैठा तरस रहा जल-हेतु निदान,
'टर टर' बोल माँगता पानी, कोई न देता उस पर कान।

दीवालों को फोड़ एक तरु पीपल का है उग आया,
कड़ी धूप में जो कूएँ के भीतर करता है छाया।
उसकी डाली पर कपोत के झुंड गुटरगूँ करते हैं,
निष्कंटक इस कूप-अंक में जो स्वच्छन्द विचरते हैं।

जिसकी टूटी दीवालों को चोंचों से खोखलो बना,
चारों ओर नीड़ रच रच कर देते हैं अंडा अपना।
एक बटोहिन सलिल के लिए आई वहाँ दूर से चल,
रस्सी डाले साँस खींचती, आँखों में भर लाई जल।

मन्दिर

कुछ काई रंगत लाई है,
पट की लकड़ी घुन-खाई है;
कुछ घास लटकती छाई है,
ईंटों में जो उग आई है;

मंडप - ऊपर फैला के सोर,
वटवृक्ष पनप करता है जोर।

टूटी छत में ऊपर ऊपर,
छोटी चोंचों में ला कर पर;
कुछ अबाबील आ कर जा कर,
निष्कंटक बना रही हैं घर;

जा कभी गगन में गाती हैं,
उड़ कभी पतंगे खाती हैं।

लटका है इक घंटा काला,
कुछ लिपटा है जिस पर जाला;
मधुमक्खी ने नवरस ला ला,
घंटे का मुख है भर डाला;

कुछ मधु का कोष बनाती हैं,
कुछ मोम लगा चिकनाती हैं।

इस जर्जर मन्दिर के अन्दर,
लिपटा के व्याल तन में विषधर ;
बम भोलानाथ भवहर शंकर,
हैं रमे मूर्ति मंजुल बन कर ;

कलरव वन-विहग मचाते हैं,
विभुवर की महिमा गाते हैं।

यह नश्वर जर्जर तन मेरा,
यह भग्न हृदय माया-घेरा ;
आशा-तृष्णा का है डेरा,
सर पड़ा विषय-विषधर-फेरा ;

इस टूटे मन्दिर में शंकर,
क्या नहीं बनाओगे निज घर ?

इतिहास

अक्षरबद्ध पुस्तकें देखीं, हस्तलिखित बहु भाषाएँ,
शिला-लेख इतिहासक देखे किन्तु न पूजीं आशाएँ;
देशद्वेष से, स्वाभिमान से, धर्म-पक्ष से रख कर लाग,
जाति जाति ने व्यक्ति व्यक्ति ने अपना अपना गाया राग;
पर अतीत ने प्रिय लेखक बन खींची जो सच्ची तसवीर,
उसमें त्रुटि की छूत नहीं है, पक्षपात का नहीं समीर;
बोल उठी रज राजपुताने की शोणित से सनी हुई,
"धर्म-देश-हित न्योछावर कर वीर पुत्र मैं धनी हुई;
पग मत धरना, मस्तक धरना, है कण कण में सोता वीर,
फड़क उठेगा रक्त शक्ति से अरि दलने को तुरत अधीर।"
गंगा-जमुना कल कल करके कहती हैं बेकल-सी क्या?
कल की मुझको याद दिलातीं, देख आज की दलित दशा;
कहती है हर लहर तड़प कर, "कल था यहीं प्रताप बली,
वलकल पहन रहा जंगल में सुख-सम्पति की शरण न ली;
किये दाँत खट्टे दुश्मन के, रख ली हिन्दूपन की लाज,
कल जिससे अरि काँप रहे थे कहाँ आज वह है सिरताज।"
काशी, मथुरा, अवध आदि के मन्दिर टूटे जो हैं शेष,
टूटे-फूटे शब्दों द्वारा गिर गिर देते क्या उपदेश?
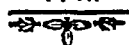
"हम तो गिरे कोटि सुत होते—धर्म-कर्म-संयमवाले,
मिटते मिटते देख रहे हैं, वीर सुअन आनेवाले;
करते हैं क्या पूज्य धर्म की गिरती ध्वजा बचाने को,
मिट जाने के पहले मुझसे आते हैं मिट जाने को?
हिन्दू-धर्म-सुमन लतिका जो रक्त-धार दे सींचेगा,
वीर गुरू गोविन्द-पुत्र-सम वलि हो दम नहि खींचेगा;
निज तन लगा प्रेम-गारा से शिल्पी भक्त बनावेगा—
नवनिर्मित मन्दिर यह मेरा तब अरि कौन गिरावेगा?"

बाल-स्मृति

अभी था मेरा शैशव-काल,
न व्यापा था जग का जंजाल,
चाल थी मन की बहु स्वच्छन्द,
नहीं था धारा में प्रतिबन्ध।
तार था बँधा न तालों में,
विहग था फँसा न जालो में,
किसी ने भरा न था निज स्वर,
बना वंसी, स्वतन्त्रता हर।
हुए थे छेद नहीं तन में,
बाँस था लहराता वन में;
विपिन में मैं लहराता था,
राग मैं अपना गाता था।
मेरी हमजोली इक बाला,
बदन था साँचे में ढाला,
खेल में देती मेरा साथ,
बिका था मैं भी उसके हाथ।
खेलते हम दोनों गुट्टी,
हँसी में भी न हुई कुट्टी।

हिलाता जब चढ़ कर डाली,
टपकती थी जामुन काली;
उसे ऊपर ही ऊपर रोक,
थी अंचल में ही लेती लोक;
बना कर काला निज अंचल,
खिलाती मुझको मीठे फल।
कुमुद का ला कर फूल सनाल,
सजाता था बाला के बाल;
कनक-सा, सुन्दर सुरभित पीत,
कंज का झूमक बना सप्रीत,
सजाता जब बाला के कान,
खेलती अधरों पर मुसकान।
गुदगुदी से घबड़ाती थी,
हँसी से लोटी जाती थी।
अधखिली कलियाँ गूँथ सँवार,
प्रेम से मुझे पिन्हाती हार।
बिठाये गये नये कुछ पेड़,
मेंड़ पर जिनके थे वगरेंड़,
जब कि वे नवपल्लव लाये,
लाल फूलों से भर आये,
पल्लवित फुनगी उनकी तोड़,
बना दोना, पत्तों को जोड़,

दूध से दोना लाते भर—
दूब का इक डंठल ले कर,
गिरह दे, फंदा उसमें डाल,
भिगो कर उसे, फुला कर गाल,
फूँकता डंठल ऊपर कर,
व्योम गोलों से जाता भर।
बुलबुले उठते जाते थे,
अनोखे रंग दिखाते थे,
य' मेरा नव विरचित संसार,
हमारे जीवन-सा सुकुमार,
फूँक में बनता, मिट जाता,
तत्त्व जीवन का दिखलाता।
घटा जब सावन की छाई,
प्रकृति बरसाती-रँग लाई,
कुमारी ने मन में ठाना,
फूल गोदने का गुदवाना।
देह थी कोमल सरस प्रसून,
टपकता था छूते ही खून,
सुई लख काँपी मानो बेंत,
चुभाते ही हो गई अचेत।
लाल हो गई रक्त से छाप,
रंग भर गया आप-से-आप,

गई सब कलियाँ कर की फूल,
गया गोदना गुदावना भूल।
ज़रा सँभली तो सूई तोड़,
दिखा कर दिया कुएँ में छोड़।
पोंछ कर आँसू धीरज दे,
हाथ में कोमल कर को ले,
पुजा देने को यह अभिलाष,
तोड़ कर लाया दुधिया घास,
दूधमय कोमल डंठल थाम,
बनाने लगा चित्र अभिराम।
न वह दिन रहा, न वह अब रात,
स्वप्न हो गई आज वह बात,
जगा कर याद उठा कर पीर,
गई क्या सो मेरी तकदीर।
सुरत के धुँधले वे पद-अंक,
मिटाता है क्यों पवन निशंक ?
अरे ! रहने दे ! जीवन-राह
नहीं देखी है मेरी आह।
भटकता फिरता हूँ मैं दीन,
मेरे पथदर्शक हुए विलीन,
परिधि का पाता ओर न छोर,
हुआ चक्कर में मेरा भोर,

फेर है रहा समय का फेर,
मेरी आशाओं का कर ढेर।
दौड़ते ही अब तक बीती,
नहीं बाजी लेकिन जीती।

धरोहर

अभी भूख से रोते रोते लाल हमारा सोया है,
धूल-भरे हीरे ने मेरे घर-भर मोती बोया है;
गरम गरम आँसू गालों से नहीं अभी तक सूखे हैं,
क्या दूँ बच्चे को हे ईश्वर! दो दिन से हम भूखे हैं।
परिक्रमा कर ध्रुवतारा की, 'सप्तऋषी' नीचे आये,
नभ से उडुगण उड़, फूलों पर ओस-बूँद बन बन छाये;
शुक्र उगा, अब चल खेतों से, ले आऊँ बथुए का साग,
सूखी लकड़ी भी बटोर कर सुलगा लूँ चूल्हे में आग।
नमक नहीं है, नहीं सही, दे साग अलोना ही भगवान,
क्षुधा मिटा प्यारे बच्चे की, अपनी भी रख लूँगी जान;
मेरा नहीं जगत में कोई, हिन्दू-रमणी हूँ पतिहीन,
रक्खूँगी मर्यादा अपनी यद्यपि हूँ अनाथ अति दीन।
होती सती संग में उनके, शव यदि उनका पा जाती,
अपने जीवन की पुष्पांजलि उन पर भेंट चढ़ा आती;
मिले नहीं अन्तिम दर्शन हा! हुआ विधाता तू प्रतिकूल,
नहीं भाग्य में थी हा! मेरे उन चरणों की अन्तिम धूल।
जहाँ खेत में काम आ गये, है विदेश वह सागर-पार,
नहीं वहाँ अपना है कोई, नहीं वहाँ गंगा की धार;

अन्तिम संस्कार तो कैसा, उनकी मिट्टी पर केवल,
मृगदल आ आ चित्र खचित हो बरसावेंगे लोचन-जल।
आ कर शरद् काँपते कर से चादर धवल चढ़ावेगा,
ऋतुनायक शत-शत फूलों से पावन भूमि सजावेगा;
ग्रीष्म शोक से पीला हो कर हा! हा! कर ले कर निःश्वास,
पत्ते गिरा गिरा आँसू से विकल फिरेगा बना उदास।
आँखों की गंगा-जमुना ये बहा रही हैं अविरल धार
प्रेम-सरस्वति से मिल कर जो पावन कर संगम का वार—
विरहानल का आतप पा कर घन बन कर उड़ जावेगी,
बरस 'फूल' पर जीवन-धन के, शान्ति-सुधा बरसावेगी।
जीवन के आधार हमारे मुख क्यों अपना छिपा लिया,
घर कर लिया दुखों ने घर में, सुख का घर कर दिया दिया;
तेरे शीघ्र मिलन से प्यारे वंचित करता है यह लाल,
तेरी यही धरोहर रक्खे काट रही हूँ जीवन-काल।
सोते में क्या देख रहा है रह रह जो मुसकाता है,
हैं! हैं! चौंक उठा क्यों डर कर, कौन दुष्ट डरवाता है?
चुप चुप मुन्ना! राजदुलारे! देखो बलि बलि जाती हूँ,
नजर लगी तो नहीं किसी की, राई-नोन जलाती हूँ।
तू डर जावे! वीर पुत्र हो! वीर पिता का लघुतम चित्र,
जिसने रण में अरिमर्दन कर, किया वीरगति-लाभ पवित्र;
उसी आर्य का वीर सुअन तू! स्वप्न देख डर जावे यों,
जीव अमर है, कायर बन कर कोई प्राण बचावे क्यों?

रो मत मुन्ना ! पलने पर आ, तुझे झुला दूँ यों झूला ,
यह गुलाब-सा गाल चूम लूँ, बेटा हमसे क्यों फूला ;
आ रे, आ जा ! बारे आ जा ! नदी-किनारे तू आ जा !
चंदा-मामा दूध पिला जा, मेरा बेटा है राजा !

सिन्दूर

गुड़ियों से मैं खेल रही थी, मुझे विश्व का ज्ञान न था,
मिट्टी के पकवान बना कर उन्हें खिलाती ध्यान न था।
मेरा तो शृंगार बना देती थी मेरी माता ही,
बाल गूँधती बिठा गोद में तब मेरा उकताता जी।
देखा-देखी धीरे-धीरे गुड़िया लगी सजाने मैं,
छोटे-छोटे गहने ला कर उसको लगी पिन्हाने मैं।
बड़ी-बड़ी अपनी सखियों को देखा आभूषण पहने,
मेरे मन में भी यह आया पहनूँगी मैं भी गहने।
माता से जा रोदन ठाना, कड़े-छड़े बनवाने को,
टीका, चन्द्रहार चमकीले कंगन, पहुँची पाने को।
बड़े बाप की बड़ी लाड़िली तुरत बुलाये गये सुनार,
कड़ी मजूरी पा कर सबने सारे गहने किये तयार।
फिर क्या था, मैं रुनुक-झुनुक पैजनी बजा झनकाती झाँझ,
सखियों में राधारानी-सी खेल खेलती प्रातः साँझ।
मुन्ना ने जो देखा मुझको आभूषण पहने सुन्दर,
लेने को वैसे ही गहने लोट गया रो कर भू पर।
'चमकीले सुन्दर गहने जो तुमने इन्हें मँगाये हैं',
ठुनुक ठुनुक बोला माँ से 'माँ मेरे लिये न आये हैं?'

अम्मा उसे उठा कर लाई धूल पोंछ, दे कर बाजा,
बोली, 'गहने लड़की पहने, मेरा बेटा है राजा।'
बहुत मनाया, एक न मानी, मचल मचल करके रोया,
झुँझुने बाजे उसने फेंके, पलने पर थक कर सोया।
उसी समय मैं फूली-फूली मन ही मन मुसकाती थी,
भैया को दिखला दिखला कर छड़े-झाँझ झनकाती थी।
प्रथम बार लड़की होने का तब ही था गौरव पाया,
एक बार बाला-जीवन में मान-ज्ञान कुछ था आया।
तब से यों ही रही खेलती मिट्टी से औ' पानी से,
घर कितने ही बना बना कर तोड़ दिये नादानी से।
माँग बना चोटी जब गूँथी सेंदुर ले मैं बोली यों,
'अम्मा लाल लाल सेंदुर तू हमको नहीं लगाती क्यों?
सेंदुर अति सुन्दर लगता है टिकुली बहुत सुहाती है,
माँग मोतियों से भरती क्यों सेंदुर नहीं लगाती है?'
हाथ पकड़ कर बिठा गोद में माता रो कर यों बोली,
'अब तक बेटी क्वाँरी तुम हो! और बहुत ही हो भोली।
जिस दिन सेंदुर तुझे लगेगा उस दिन तेरा होगा ब्याह,
पर-घर तब तू चली जायगी', यह कह रोई वह भर आह!
माता को यों रोती पा कर मन में अपने घबराई,
फिर उसका अनुरोध न करके चुपके से ही उठ धाई।

+ + + +

ग्रीषम था, भीषण गर्मी थी, पंखा मैं भी झलती थी,
एक कोठरी में सोई थी भूमि तवा-सी जलती थी।
जाने पाती थी नहि बाहर घर में रहती कड़ी निगाह,
कभी कभी वन के फूलों के लखने की होती थी चाह।

\+ + + +

इक दिन ढोलक लगी ठनकने, होने लगा मधुर संगीत,
झुंड झुंड युवती जुड़ आईं गाने लगीं नाच कर गीत।
माता मुझसे लिपट लिपट कर विलख विलख कर रोती थी,
'पाला जिसे कलेजे में रख बिलग वही मैं होती थी।
हे भगवान्! नारियों को क्यों ऐसा अहह! अधीर किया?
हृदय दिया होता पत्थर का, जो इनको यह दुःख दिया।
जिसका मुँह थी सदा जोहती, हे हरि! वह क्यों जाती है?
हुई दूसरे घर की वह क्यों? कहते फटती छाती है।'
रोती थी मैं जी खो-खो कर, कर वियोग-दुख का अनुमान,
माता-पिता बहन-भाई को विरह-व्यथा लेती थी जान।
कुल, परिवार, सहेली-मेली, घर-आँगन यह रूप-निधान;
हाय! हाय! कैसे छोड़ूँगी, फिर कब देखूँगी भगवान्?
खाना-पीना, सोना-हँसना ये सब मुझसे विदा हुए,
बस केवल था रोना-धोना जो मम संगी सदा हुए।
चौक पुरा था उस आँगन में, मंडप सुन्दर बना हुआ,
पल्लव-युत था कलश मनोहर, पत्र-पुष्प से सजा हुआ।

पंडितगण थे मंत्र सुनाते, बैठे बहुत बराती थे,
साज-बाज था, लोग-बाग थे, रथ थे, घोड़े-हाथी थे।
अर्द्धनिशा थी, मेरे सिर में तभी गया सिन्दूर दिया,
या मम सिर पर विश्व-भार रख बाल-भाव था दूर किया।
वह ही सेँदुर-रेख जिसे मैंने सुख-आभा जानी थी,
जिसकी ललित लालिमा बहु-लालसा-ललाम-निशानी थी।
आज उसीने रच डाला है चिन्ताओं का इक संसार,
मेरे ऊपर लाद दिया गृह-जीवन का सारा यह भार।
अब प्रियतम मुख चिन्तित लख कर चिन्ता से हूँ भर जाती,
बालक-जन को दुखी देख कर बार बार हूँ घबड़ाती।
पीहर-समाचार पाने की चिन्ता कभी सताती है,
कभी सहेली हेली-मेली की भी सुध हो आती है।
पहले सुख का ज्ञान नहीं था, जब थे खेल-कूद के दिन,
पा कर झाँझ, रुला मुन्ना को, मैंने सुख पाया इक छिन।
उस दिन से ही जीवन-सुख-शशि दुख-दल-घन में लीन हुआ,
किरणावलि झलकी थी जिसकी वही अहह! छिप क्षीण हुआ।
छेड़ो मत अब मुझे एक छिन रो कर दुःख भगाने दो,
शैशव स्वप्निल सुख इस अरुणोदय में मुझे भुलाने दो।

बंसी

लाया पकड़ पंतगे भुनगे, ले आया हूँ चारा भी,
औ' बंसी मेरी चोखी है, मन्द यहाँ है धारा भी।
इसी करारे पर मैं बैठूँ, जल में जो है कढ़ा हुआ,
जलकुम्भी कुछ तैर रही हैं, है सिवार भी बढ़ा हुआ।
बनमुर्गी झाड़ी से निकली, बच्चे लिये किनारे पर,
जल में फैली, जड़ पर बैठी, लगी चुगाने क्रीड़ा कर।
जल को मानो छूते ही से उड़ते यहाँ जुलाहे हैं,
जिन पर टूट रहे मुँह खोले अबाबील औ' चाहे हैं।
कुछ खाने को आहा! कैसी उछल पड़ी मछली ऊपर,
बिजली-सी पनडुब्बी कैसी टूट पड़ी चिपका कर पर।
यहीं लगाता हूँ बस बंसी, यहीं लगेगी मछली झट,
जल से बुल्ले छूट रहे हैं, है शिकार की कुछ आहट।
बैठा हूँ चुपचाप घात में ध्यान धरे बगले के साथ,
डोरी हिली, दिया झटका भी, किन्तु नहीं कुछ आया हाथ।
ऊब गया घंटों मैं बैठा, तौल तौल पर कितनी बार,
पनडुब्बी पानी में गिर कर अपना करती रही शिकार।
बगले ने भी तब से कितने जीवों को है खा डाला,
पर मेरे ही लिए पड़ा क्यों मछली का इकदम ठाला।
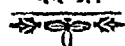
वंसी को निकाल फिर देखा, चारा खूब लगा कर और,
बगले को जा मार भगाया, फेंकी डोर दूसरी ठौर।
यह क्या! लकड़ी लगी डूबने, झटका दे कर खींची डोर,
फँसी कोई मछली है भारी, फिर फिर लगी लगाने जोर।
मैं था अपनी ओर खींचता, वह ले जाती अपनी ओर,
इसी तरह हम दोनों अपना अपना रहे लगाते जोर।
वह जब थक कर सुस्त पड़ गई, लगा खींचने मैं जी छोड़,
तट के निकट तड़प कर इकदम चली गई वह डोरी तोड़।
मैं पीछे झुक पड़ा झोंक से, फिर देखा पानी में खूब,
डूब गई थी मछली जल में, मैं भी गया लाज में डूब।
लेती गई मेरी वंसी भी, बनी मेरी वीणा वेतार,
ध्वनि मेरी वेसुरी हो गई, वह जीती मैं आया हार।

भड़भूँजा

मंजु ऋतुराज सबको भाता है,

नव-कुसुम-दल का जो विधाता है,

पर मुझे ग्रीष्म सबसे प्यारा है,

मेरे जीवन का जो सहारा है,

दीन हूँ, मैं ग़रीब भूखा हूँ,

विश्व का एक पत्र सूखा हूँ।

डाल जिसको उठाये थी सर पर,

प्रेम-रस दे के जिसको रक्खा तर,

ग्रीष्म ने उसको आज पीला कर।,

प्रेम-बंधन को खूब ढीला कर,

दे के झोंका गिरा दिया भू पर,

मिट्टी सोने को कर दिया छू कर।

पवन उनको उठाये फिरता है,

जो चढ़ा वह अवश्य गिरता है,

अस्तु, मैं भी पतित हो पत्ते-सा,

बेसहारा समाज से हूँ गिरा।

सूखे पत्तों को बस बुहार बुहार,

अपने ही सा इन्हें भी दीन विचार,

एक बड़े टोकरे मे भर भर कर,
शीश पर अपने रख के लाया घर।
घर तो क्या, झोंपड़ी है सरपत की,
झाँकता रहता जिसमें दिनपति भी,
उसके भीतर घड़ों से करके आड़,
खोद कर भू बना है मेरा भाड़।
बालुका सुरसरी से लाये है,
तोड़ बरतन को घर बनाये हैं,
लोग दाना भुनाने जब आते,
झोंक पत्ती को रेत गरमाते।
जलते रेते को उस अनाज में डाल,
छान चलनी मे ठीक ताव सँभाल.
रेत में, दाने दाने, ताव से मिल,
हैं कली-सा, चिटक के जाते खिल,
हूँ मनाता सदा रहे पतझाड़,
जिसमें बुझने कभी न पावे भाड़।

गाड़ीवान

चक्का तो है चाक काठ का, धुरा धरा है इक बल्ला,
बाँसों का बस ठाट बना है, गाड़ी चलती कर हल्ला।
बोझा लाद बैल को हाँका, पूँछ एँठ कटु शब्द उचार,
गर्दन घट्टा पड़ी उठा कर, बढ़े बैल खा-खा कर मार।
गले पड़ी सोने की मुद्रा, कानों में सोहे लुरकी,
गाड़ीवान कान में उँगली दे गाता बिरहा-लुरकी।
नंगे सर है, वस्त्रहीन तन, नहीं उसे कुछ भी परवाह,
ग्रीष्म, शिशिर, वर्षा, वसन्त हो, सदा एक रस चलता राह।
पड़ा अकेला राह काटता, अपने दो बैलों के संग,
राह-कुराह खेत-बारी में गाड़ी ले जाता इकरंग।
मलय न हो तो लू के झोंकों में भी सोता जाता है,
बैल स्वयं बढ़ते जाते हैं, यद्यपि नहीं चलाता है।
भड़के बैल किसी अड़चन से, चौंक पड़ा तब गाड़ीवान,
तुरत सँभाल नकेल, मौज से, उसने दी फिर लम्बी तान।
ठीक दुपहरी की गरमी में देख सघन तरु की छाया,
और निकट ही देख जलाशय गाड़ी को जा ठहराया।
बैल खोल पानी दिखलाया, उभरी जड़ में डोरी फाँस,
बाँध दिया बैलों को, जो अब चरने लगे घूम कर घास।

फिर जा जल में खूब नहाया, चटनी से खाया दाना,
चुल्लू से फिर पानी पी पी छेड़ दिया कोई गाना।
गया भूमि पर लेट छाँह में, कुछ कर लेने को विश्राम,
थोड़ी देर निवार दुपहरी, नाँधा बैल, चला कह राम।
काटा पथ को जो शृगाल ने या मिल गया कहीं काना,
फिर तो मीन-मेख में पड़ कर रुक जाता उसका जाना।
नीलकंठ ने दरस दिया या मिली सोहागिन भरे घड़ा,
साइत बनी देख चल देता, लक्षण अच्छा जान बड़ा।
संध्या हुई खोल दी गाड़ी, किसी गाँव-बस्ती के पास,
थके हुए थे बैल विचारे, दौड़े खाने भूसा-घास।
सूखे कंडे तब बटोर कर, फूँक फूँक सुलगाई आग,
आटा गूँध एक पत्थर पर बाटी सेंकी गाते राग।
जब बाटी पक लाल हो गई, अच्छी तरह गई जब फूल,
गटक गटक कर बड़े कौर से खाया खूब झाड़ कर धूल।
हाथ पेट पर फेर फेर कर, लीं गहरी फिर कई डकार,
लम्बा हुआ भूमि पर पड़ कर, देखा स्वप्नों का संसार।
बैल जुगाली करके सोये, यह है खर्राटे लेता,
पता नहीं सपने में भूला कहाँ कहाँ फेरी देता।

व्याध

हल से जोत खेत को अपने, मिट्टी तोड़ बराबर कर,
कूँड़ बनाता पति जाता है, वधू बीज बोती झरझर।
जीवन-लीला में आने से अंकुर का मुख पीत हुआ,
आवागमन-चक्र में पड़ने के डर से भयभीत हुआ।
इतने ही में मलयानिल ने, गले लगा स्वागत गाया,
सूर्य-किरण ने रंग चढ़ा कर सब्ज-बाग जो दिखलाया।
नहीं शान्ति स्थिरता में है कुछ, जीवन है केवल संग्राम,
खेला रहा है सबका नायक, करो खिलाड़ी अपना काम।
हम हैं पात्र खेल के उसके, यह सब उसकी लीला है,
आओ, बढ़ो, साथ में खेलो, देखो विश्व रँगीला है।
लोरी सुन कर मलयानिल की, सूर्य-रश्मि की सुन कर बात,
मूल चन्द्रिका के झूले में, हुए हरे अंकुर नवजात।

× × ×

इसी खेत में, जिसमें उग कर दाना अँखुआ लेता है,
एक कबूतर का जोड़ा आ चुगता फेरी देता है।
बाल फुला कर निज ग्रीवा के कभी गुटरगूँ करता है,
मिट्टी हटा चोंच से, दाना चुगता, कभी विचरता है।
चोंच खोल कर लपका था कपोत ज्यों ही चुगने दाना,
इतने ही में एक व्याध ने चुपके से शर संधाना।
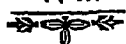
तीर निशाने पर जा पहुँचा, निकल गया सीने के पार,
थोड़ा उड़ कर गिरा कबूतर, बहने लगी रक्त की धार।
अति ही व्याकुल हो कबूतरी, उड़ भागी पहले तो डर,
फिर वियोग में अपने पति के देने लगी वहीं चक्कर।
झाड़ी में से निकल व्याध तब झपटा पक्षी के ऊपर,
और बड़ी ही निर्दयता से उसे पकड़ पटका भू पर।
मुँह बा बा कर व्याकुलता से, कई बार फड़का कर पर,
तोड़ दिया दम, आँख उलट दी, लटक गया पक्षी का सर।
उसे उठा तब तौल हाथ में, पंख पकड़ कर लटकाया,
हर्षित हो कर लौट चला घर, ले कर अपनी यह माया।
दूर दूर ऊपर मँड़राती, उड़ कबूतरी शव के साथ,
विकल मौन कहती थी मानो, "छोड़ कहाँ जाते हो नाथ!
स्वर्ग-लोक में अब विचरोगे इस पापी दुनिया को त्याग,
हिंसा जिसमें है विनोद, लग जावे उस दुनिया में आग।
प्राण रहेंगे तुम बिन कैसे, कहाँ गये हे जीवन-धन!
कौन प्यार मुझको दिखला कर वारेगा मुझ पर तन-मन?
हाय! लुट गया सब कुछ मेरा, है वियोग में चित्त विकल,
ठहरो प्रिय! मैं भी आती हूँ प्राण-पखेरू! तू उड़ चल।"
निज धन लिये व्याध गृह पहुँचा, खूब चटपटा बना शिकार,
जीवन-यापन करने को नित लाता था जीवों को मार।

× × ×

जीवन यों ही रहा बिताता अपनी इच्छा के अनुसार,
काल शिकारी जब आ पहुँचा, इसी व्याध का किया शिकार।
गिरा, श्वास भी ऊर्ध्व हो चली, रुँधा गला, आँखें हैं तर,
प्राण-पखेरू ने भी उसके उड़ने को फैलाये पर।
हंस उड़ गया रम कर थोड़ा, मिट्टी केवल पड़ी रही,
उस पर काक निडर बैठा है, जीवन का है अन्त यही।

कृषक-वधूटी

सोह रही, मन मोह रही है, घास खेत से निरा रही,
विरह-कथा राधा प्यारी की गा गा कर है सुना रही।
फूला देख खेत सरसों का, फूली नहीं समाती है,
पहन वसन्ती सारी प्यारी फूलों में मिल जाती है।
जब उसका पति मोट चलाता, वह पानी बरकाती है,
क्यारी बना-बना के चौरस जल से उसे पटाती है।
पौधों ने जब बाल निकाले, इस बाला ने भी निज बाल—
करके मुक्त पीठ पर डाले, कुछ से ढके वक्ष औ' गाल।
जोता-बोया, रखवाली की, सींचा खेत पसीने से,
हरे हुए पौधे प्रमोद से, सीकर-आसव पीने से,
कनक-रंग होली में छाया, निरख लड़ी जौ-मालों की,
पके बाल गेहूँ के तो भी मस्ती है मतवालों की।
कृषक-वधूटी खेत काटती हँस-हँस कर ले कर हँसिया,
गाती गीत—"सुना दो मोहन, प्रेम भरी अपनी बँसिया"।
भर भर अंक उठा कर रखती, बालें दानों-भरी हुई,
पवन-वेग से आँचल उड़ता, बाला मानो परी हुई।
हाथ रोक कैसी डर जाती, पीछे हट कर 'अरे' उचार!
चूहा बिल से निकल भागता मानो राज्य-विनाश निहार।

सेती अंडे-बच्चों को थी, छिपी खेत में बेचारी,
आहट सुन कर उड़ जाती है चिड़िया इक भय की मारी।
उड़ जाते तब होश ठिठक कर, खड़ी निरखती इधर-उधर,
देख विहग मँड़राता ऊपर, नीचे फिर देखा फिर कर।
छोटे दो बच्चों को देखा चें चें करते मुँह बाये,
बिना पंख के छोटे डैने, बाल न थे तन पर आये।
दुखी हुई, क्यों इन्हें सताया, "चिड़िया! इन्हें चुगा आ कर",
ऊपर देख, बुला कर ऐसे, चली गई घर पछता कर।
गई नहीं फिर खेत काटने जब तक हुए न परवाले—
उड़ जाने पर, वहीं भूमि पर नन्हा निज बालक डाले।
काट-काट कर ढेर लगा कर भर भर कर अपना खलिहान,
पीटा, माँड़ा और उसाया पति-सँग मिल, सह कष्ट महान।
अब इसकी होली होवेगी, गावेगी यह भी अब राग,
रंग-भरे नयनों से प्रिय-सँग लिपट लिपट खेलेगी फाग।

नाविक-वधू

बाट कभी से जोह रही हूँ संध्या होने आई है,
पक्षी भी सब घर को लौटे चकई भी बिलगाई है।
"बब्बा बब्बा" कहता कहता प्यारा बच्चा भी सोया,
पता नहीं बालम है मेरा आज कहाँ बन में खोया?
फँसा कहाँ दल-दल में जा कर, कौन भँवर में है नैया?
बरसुहाग औ' माँग हमारी रखना है गंगा मैया!
अपनी मर्यादा मत खोना, माँग न मेरी धो देना,
मुझे डुबो देना पहले ही जो वियोग-दुख हो देना।
छप छप का यह शब्द हुआ क्या! प्यारे की तो नाव नहीं?
मीन पकड़ने को अथवा है उछला ऊदबिलाव कहीं?
देख रही हूँ रंग हवा का, प्रबल लहर उठ आती है,
मछली-सी तड़पी जाती हूँ, विचलित व्यथा बनाती है।
कम्पन लख कर सलिल-वृत्त का दाईं आँख फड़कती है,
जलकुक्कुट के पर का रव सुन छाती अधिक धड़कती है।
जल पर देख रही हूँ कब से केवल वहाँ निराशा है,
तारे जल पर चमक रहे हैं केवल वही तमाशा है।
पड़े रेत पर सोते ही थे कछुए औ' घरियार, मगर,
पिछले पहर सेज से उठ कर छोड़ अकेली लिया डगर।

ताराओं की छाँव-छाँव मे जा कर डाला जाल कहीं ;
मोह-जाल में मुझे फँसा कर, लौटे अब तक गेह नहीं।
कहाँ टिटिहरी बोल उठी यह क्या दिखलाता है वह श्याम ?
हाँ! हाँ! कुछ नौका ही सी है; नयन फड़कता भी है वाम।
अहा अहा हा! मोहन ही हैं! आये आये—ये आये ;
क्या मैं करूँ? चरण धो पी लूँ, देखूँ वह क्या हैं लाये।
नाव किनारे पर अब ठहरी, कुछ मेंढक कूदे जल में ;
डाँड़ रोक; रस्सी से बाँधी नाव; वहीं सूखे थल में।
लंगर डाल दिया प्यारे ने मेरी भी तबियत ठहरी ;
प्यारे ने आ गले लगाया, एक साँस खींची गहरी।
हँसते हुए भरा अंचल को फलदल औ' तरकारी से ;
दिखा-दिखा कर भरी टोकरी रोहू सोयें बरारी से ;
दीर्घ प्रतीक्षा में मुरझाई माला दृग-जल से कर तर ;
प्रेम-सहित प्रिय को पहना कर सादर उनको लाई घर।

अभिसारिका

नंगे पाँव चली जाती है, लिये दूध की मटकी,
गुखरू के कितने ही काँटे पग में लगे, न अटकी।
सारी की लहरी में पड़ कर झुक झुक शीश नवा कर,
कुसुमित घासों ने पुष्पों से भेजा उसे सजा कर।
लिपट गया लिपटौआ छिप कर, जितना उसे छुड़ाया,
बिखर गया बस टूट टूट कर, बिलग न होना भाया।
पॉव बढ़ाये लपकी जाती, तू अपनी ही धुन में,
खिंचती जाती है पतंग-सी, बँधी प्रेम के गुन में।
दूध बेचने के मिस निकली गोरस रही छिपाये,
बोली नहीं तनिक, थी मानो मुँह में दही जमाये।
कितने रसिक राह में उसकी, आँखें रहे बिछाये,
चख कितने ही रस चखने को रहे बहुत ललचाये।
आँख चुरा कर निकल गई झट, देर न कहीं लगाई,
आँख लड़ी जिस प्रियतम से थी, मिलने को वह धाई।
पुरवा चल झकझोर रहा था, केशराशि-अलिदल को,
उड़ा रहा था गिरिशृंगों से आँचल के बादल को।
घिरे खड़े थे उमड़ घुमड़ कर श्यामवर्ण के जलधर,
बिजली यह होती जाती थी, पॉव न रुकते पल भर।
वाम हाथ से मटकी थामे, सरकाए घूँघट को,
उड़ते केशों को सँभालती, कभी सरकते पट को।

बढ़ती जाती थी उमंग में, चढ़ती लिये जवानी,
कुछ फुहार पड़, धार बाँध कर लगा बरसने पानी।
गरज गरज कर झड़ी बाँध दी, अरज-गरज नहि मानी,
पानी चढ़ जाने से तन की आई निखर जवानी।
भींग वस्त्र तन में लिपटे तो आभा प्यारी झलकी,
अंग अंग सब हुए प्रदर्शित, रस की प्याली छलकी।
भींगे अंचल को निचोड़ कर कभी गारती जल थी,
सराबोर थी, फिर भी पानी बिना मीन बेकल थी।
वृक्ष नहीं छतनार कहीं था, कुंज झाड़ियों का था,
मग में रुकना छन भर उसको कहीं नहीं भाता था।
हरित भूमि से निकल निकल कर भुईंफोड़ का छाता,
वीर-बहूटी का सुन्दर पट जल से रहा बचाता।
पर इस ललना बेचारी को मिली न कोई छाया;
इसी समय काला काला कुछ आता हुआ दिखाया।
ठमक गई यह, वह बढ़ता ही बहुत निकट जब आया,
काले कम्बल की घोघी को सिर से दूर हटाया।
पग रुक गये, चार आँखें हो, पुलकित हो शरमाई,
कृष्ण-चरण छू बढ़ती यमुना की धारा हट आई।
विहँसा युवक, तेज था मुख पर, था मजबूत गठीला,
घुँघराले काले बालों पर बँधा अँगौछा ढीला।
लोहे-सी जंघा के ऊपर कसी हुई थी धोती,
घनी शिखा करवट ले ले कर गर्दन पर थी सोती।

तन पर कोई वस्त्र नहीं था, गर्दन में था गंडा,
एक हाथ में काला कम्बल, एक हाथ में डंडा।
सम्मुख देख हृदय-धन अपना ललना कुछ सकुचाई,
भींगे हुए खुले अंगों की जब उसको सुध आई।
लज्जा से आँखें नीची कर, छिपा वक्ष को कर से,
डूब गई हो पानी पानी, लोचन से जल बरसे।
इक क्षण निरख नवल छवि उसकी—शोभा कनकलता-सी,
फूट फूट कर आभा निकली पड़ती दीप-शिखा-सी।
बोला युवक—"प्रिये, क्यों तुमने इतना कष्ट उठाया ?
आँधी-पानी भी किंचित् इस मन को रोक न पाया।
घनी घास, यह विकट राह, वन बीहड़, रात अँधेरी,
तेरा मुख चूमूँ, फिर चूमूँ, लख हिम्मत यह तेरी।
फिर इतना क्यों कष्ट उठाया ऐसे विकट समय में,
कौन खींच कर तुझको लाया ऐसे त्रास-निलय में ?
द्रुतगति चलने से नारी का उठ उठ हृदय धड़कता,
आलिंगन में पक्षी ऐसा रह रह और फड़कता।
जैसे हो मन्दार पुष्प के ओठों पर अरुणाई,
और हृदय के सिंहासन पर अर्क-ओक-छवि छाई।
श्रम से कुछ कुछ श्याम हुए से अधर लाल हो आये,
मन-मन्दिर के सिंहासन पर मूरत एक बिठाये।
ललना बोली—"मैं क्या जानूँ कौन खींच है लाया,
तेरे सुखद मिलन ने प्यारे सारा कष्ट भुलाया।

इसी देवता के दर्शन को नेत्र हमारे तरसे,
अपने गिरिधारी को पाया, इन्द्र खूब अब बरसे!
हो प्रसन्न मुख प्रियतम बोला, "चन्द्रमुखी! सुकुमारी!
मेरे जीवन के वसन्त की प्रिय सुरभित फुलवारी!
मेरे ऊपर दया दिखा कर इतना कष्ट उठाया,
प्रणय-सूत्र में बँध कर मेरे सब कुछ और भुलाया।
पास हमारे नहीं ओर कुछ, एक हृदय था प्यारा,
किया समर्पित तव चरणों में, तन मन धन सब वारा।
पर तूने भी सोच लिया है—पग निज किधर बढ़ाया,
किस कंटक से हृदय-पुष्प को अपने है उलझाया?
तू भूली है भारी भ्रम में, कामिनि भोली-भाली,
तू किस पर अर्पण करती है निज यौवन की डाली?
हे सुमुखी! तू सोच तनिक तो, मेरे सँग क्या सुख है?
खो कर निज उज्ज्वल भविष्य को तू सिर लेती दुख है।
बड़े बाप की बेटी तू है, है चौधरी-घराना,
कनक-कटोरे दूध पिया है, खेला मोती-दाना।
आभूषण बहुमूल्य अलंकृत जगमग ज्योति तुम्हारी,
रँगी-केसरिया-रंग सुगन्धित कामदार तव सारी।
लाल भरे अँगिया में तेरे, मुँदरी रत्न-जड़ी है,
आसमान से बातें करती—बखरी बहुत बड़ी है।
ये सारे सुख मेरे सँग में, प्रिये! कहाँ पाएगी?
अब से भी मन को समझा ले, पीछे पछताएगी।

मेरे तन पर एक लँगोटी, वह भी फटी-पुरानी,
काली कमली करे निवारण शीत, घाम औ' पानी।
धन मेरा बस धेनु यही है, दिन भर जिसे चराता,
पय-प्रसाद पा सुधा पान कर आनँद में छक जाता।
रहने को झोंपड़ी एक है, खर से जो है छाई,
वह अँकोल के वृत्त-झुंड में पड़ती तनिक दिखाई।
कनक-वृत्त हैं खड़े वहीं पर, पास नहीं है सोना,
शस्यश्यामला हरित भूमि का कोमल सुखद बिछौना।
कहाँ अटारी वह सुखदायक, कहाँ फूस का डेरा,
फिर भी सुख की आशा करना मेरे सँग में तेरा—
केवल है मृगतृष्णा प्यारी, है आकाश-कुसुम-सा,
अनुचित होगा भूल करे यदि समझदार भी तुम-सा।
प्रेम बिचारा तो अन्धा है, नहीं देखता आगे,
समझे बिना न जाना अच्छा उसके पीछे भागे।
नहीं सोचती है भविष्य तू, क्यों अपना सुकुमारी?
तेरा ही हूँ, बना रहूँगा, तेरा सदा पुजारी।

× × ×

अबला विकल हुई सुन कर यह, ले उसास, घबड़ाई,
हृदय-भार हलका करने को लोचन-धार बहाई।
बोली, "ऐसी बात प्राण-प्रिय! मुख से तुम न निकालो,
इस अबला को दुख-समुद्र में प्रियतम! तुम मत डालो।

मेरे तो आनन्द तुम्हीं हो, एकमात्र अभिलाषा !
जीवन के सर्वस्व तुम्हीं हो, मेरी निधि, मम आशा !
मेरे तुम शृंगार अतुल हो, अलंकार-आभूषण,
हृदय-पद्म कब खिल सकता है बिना प्रेममय पूषण ?
बिना तुम्हारे महल अटारी केवल बन्दीखाना,
उसमें रहने से अच्छा है वन वन अलख जगाना।
संग तुम्हारे पर्णकुटी यह होगी आनँदकारी,
करूँ निछावर इक चितवन पर विश्व-सम्पदा सारी।
मैं बिक चुकी तुम्हारे हाथों, हुई तुम्हारी दासी,
अब मत हाथ छुड़ाओ मुझसे मेरे हिय के वासी !
बनी भिखारिन माँग रही हूँ अटल प्रेम की भिक्षा,
क्या लेने आये हो प्यारे ! मेरी आज परीक्षा ?
तो आओ हम शुद्ध हृदय से शंकर की सौं खावें,
अटल सदा हो प्रेम हमारा, शिव से यही मनावें।"

वियोगिन

'विदा दो' कहा कन्त ने जब,
प्रिया की हुई मलिन छवि तब;
युगल दृग भर आये जल से,
शकुन को भर लाई कलसे।
देख कुछ प्रियतम-दृग में जल,
मीन बन गई, हुई बेकल;
हृदय में खींचा, कर थामा,
चित्र हो गई, नई वामा।
पाँव पर आँसू गिर गिर कर,
मनाने लगे—'न छोड़ो घर'।
'जो पढ़ना हो तुमको साहित्य',
नयन ने कहा, 'पढ़ो घर नित्य,
ज्ञान का मैं ही हूँ भंडार,
चलाता हूँ मैं ही संसार,
बनाये मैंने तुलसीदास,
सूर को लाया मैं ही फाँस,
गर्व कर सबका चकनाचूर,
आँखवालों को करता सूर,

धर्म, दर्शन औ' नीति, विज्ञान,
इशारे में हों अन्तरधान,
छुड़ाया नारद का भी ज्ञान,
मिटाया ऋषियों का भी मान।
पढ़ो तुम चितवन का इतिहास,
बना है लोक इसी का दास।
लड़ा कर भाई से भाई,
आग पानी में लगवाई।'
उसासों से अंचल ने हिल,
लिपट कर समझाया मिल मिल—
'अंक में मेरे है भूगोल,
देख लो विश्व हृदय को खोल :
झील, वन, मृग, मुक्ता औ' कीर,
गुहा, गिरि, कुंड, प्रेम का नीर ;
निरख लो मेरी पुस्तक खोल,
प्रकृति का सब रहस्य अनमोल।'
बोलने लगे अंग प्रति-अंग,
मौन कह कह 'मत छोड़ो संग'।
कली से विकसित हुआ न भाव,
होंठ तक आता था 'मत जाव'।
सजन ने मुख-छवि पर मन वार,
थाम कर कंपित कर सुकुमार,

कहा—'हे प्रिये ! न घबड़ाओ ,
नहीं चिन्ता मन में लाओ ;
प्राप्त कर विद्या भू-विज्ञान ,
मिलूँगा शीघ्र, न संशय मान ।
समय है थोड़ा जाने दो ,
न चिन्ता मुख पर आने दो ,
प्राणप्यारी ! दो बिदा सहर्ष
बीतते क्या लगता है वर्ष ।'
जलज पर छाये थे जलकण ,
भींगते गाल चूम तत्क्षण ,
देख प्रिय चन्द्र-वदन-आलोक ,
उमड़ते हृदय-वारि को रोक,
अधर की सरस सुधा कर पान ,
किया प्रेमी ने तुरत पयान ।
ठगी-सी खड़ी रही बाला ,
पहनती आँसू की माला ।
देखती थी उड़ती रज शेष ,
छिपे जिसमें मन-कमल-दिनेश ।
ढला दिन यों ही लखते राह ,
विरह-सागर की लेते थाह ,
न पाया अन्त, न पाया छोर ,
गई छिप आशा की भी कोर ।

विरह में जलता सारा दिन,
विकल चंचल न चैन इक छिन,
ढूँढ़ता शनैः शनैः सब लोक,
दिवाकर बन कोकी का कोक,
तैरता विरह-पयोधि-अनन्त,
न पा कर पार, हार कर अन्त
डूबने चला जहाँ गिर कर,
अंक में लिया निशा ने धर,
खिली, फूली न समाई रात,
बचा कर यों अपना अहिवात।
नाव इक सोने की मँगवा,
श्याम अंचल में कन्त छिपा,
रात भर करती रही विहार,
लुटाती मोती भर भर थार।
हुआ निशि के वियोग का अन्त,
नहीं ललिता ने पाया कन्त।
काटती सुख से दुनिया रात,
काटती रमणी को थी रात।
निशा भींगी रस में ज्यों-ज्यों,
हृदय डूबा जाता त्यों-त्यों।
चढ़ा जब पावस का नवरंग,
हृदय मे उठने लगी तरंग,

लौट आये सब व्यापारी,
घटा की छटा देख प्यारी।
लाद कर बधिया भर भर गौन,
राह ली घर की सबने मौन।
न देखी सूद-व्याज की हानि,
न टोटा-घाटे का कुछ ध्यान,
टेंट में रख कर पूरा दाम,
बढ़ा दूकान, बन्द कर काम,
सबों ने घर बरधी हाँकी,
याद कर प्यारी की झाँकी।
बना कर टोली-सी, मिल मिल,
किया तय मंज़िल पर मंज़िल।
कुशल से करते हुए पड़ाव,
हृदय में भरे मिलन का चाव;
पहुँच ही गये अन्त निज ग्राम,
भवन निज गए सुमिर कर राम।
दौड़ घरवाले सब आये,
गले मिल मिल कर सुख पाये।
मिटा अर्धांगिनि का मन-दाह,
डूबते ने पाई ज्यों थाह।
चढ़ाया तुलसी जी पर जल,
थी मन्नत मानी हो बेकल।

प्रेम से प्रियतम के पद पूज,
सराहा भाग्य खिली ज्यों दूज।
नीम के नीचे, जिसकी डाल,
भूमि पर लोटी मानो व्याल,
खूब ही सेँदुर से टीकी,
सात मूरत हैं देवी की।
धूम से सखियों को सँग ले,
बना पकवान भली विधि से,
पूजने चली महारानी,
मानता जिसकी थी मानी।
वहीं पर गीत मधुर गा कर,
चढ़ा कर छाक, फूल, अम्बर,
भक्ति से कर प्रणाम सादर,
मौज से लौटी युवती घर।
भुला कर विरह-व्यथा गम्भीर,
बनी सुन्दरता की तसवीर,
बिहँसती, गाती रस के गीत,
चूनरी पहन सुरंगी पीत,
मिलन से प्रियतम के फूली,
विश्व के सारे दुख भूली।
चली वह जो बरसाती रस,
देख ललिता रह गयी तरस,

कहा, "क्यों रूठीं महरानी,

चूक क्या हुई नहीं जानी,

नहीं अब तक जो पूजी आस,

भाग्य में मेरे नहीं विलास,

हृदय-धन मेरे जो आते,

भाग्य सोये मम जग जाते,

पूजती मैं भी तुमको आ,

धूम से स्वर्ण-प्रदीप जला।

पुनः लख श्यामल वन अभिराम,

नेत्र-पथ में आये घनश्याम,

लगे बरसाने टपटप नीर,

भींग कर ललिता हुई अधीर।

कलेजे में उठती इक पीर,

पड़ी चू भू पर बन दृग-नीर,

हूक-सी उठी, भूमि पर गिर

लोटने लगी भूमि पर फिर।

पड़ी थी ज्यों पदांक भू पर,

उठाता कौन उसे ऊपर?

थी आशा की रेखा काया,

अनल में कंचन ज्यों ताया,

अनिल सँग उठती गिरती थी,

सुमन-परिमल-सी फिरती थी।

सजल थे लोचन कज्जल-हीन,
आँख थी आँखों ही में लीन।
सँवारी थी न माँग-चोटी,
लटें थीं नागिन-सी लोटी।
अधर मुसकान-तरंग-विहीन,
पान-से थे न लाल रंगीन।
हुए थे कुन्द-कली वे दाँत,
लाल को करते थे जो मात।
फूल की सेज न थी भाती,
चाँदनी से थी जल जाती।
विरह में थी बिलकुल बेचैन,
द्वार पर ही रहते थे नैन।
एक आशा पर—जीती थी,
नहीं कब की हो बीती थी।

प्रेम

प्रीति नहीं है, फिर भी उनके बिना चित्त घबराता है,
सम्मुख रहते आँख न उठती, चले गये जी जाता है।
प्रिय की बातों का उत्तर भी पूरा दिया न जाता है,
उचित यही है, फिर क्यों मेरा जी रह रह पछताता है?
पहले तो संकोच नहीं था, अब तो लाज सताती है,
नहीं सामने है, पर सूरत सपने में दिखलाती है।
क्यों मुझमें यह हुई न्यूनता, भावों में है क्यों अन्तर?
लोग कहेंगे प्रेम यही है, नहीं नहीं है छू-मन्तर।

अनाथा

थोड़े फूस बचे हैं जिनको नित आ पवन उड़ाता है,
छप्पर केवल ठाट ठाट है जिसको घुन नित खाता है।
है दीवार बनी मिट्टी की खदर गई जो लोने से,
रही सही मिट्टी भी बहती जाती है नित रोने से।
जब तक मेरे जीवन-धन थे सुख-सम्पति की थाह न थी।
उनके मन-मन्दिर में रहते महलों की परवाह न थी;
छोड़ अकेली सजन सिधारे भाग्य हमारा मन्द हुआ,
टूटा तार हृदय-वीणा का आनँद का स्वर बन्द हुआ।
चक्की पीस काटती थी दिन जब तक यह तन था मजबूत,
चरखा भी मैं रही कातती जब तक लख पाती थी सूत।
अब मैं सूख हुई हूँ काँटा, आँख-ज्योति ने दिया जवाब,
मुँह में दाँत न आँत पेट में, हिलने की भी रही न ताब।
मिट्टी का दीपक है मेरा होता झोंके से झिल-मिल,
सूखा पड़ा स्नेह है अब तो बत्ती बुझती है हिल-हिल।
यह लो, दीपक का अब मेरे चुका तेल भी जाता है,
हिचकी आई, दम भी टूटा, छूटा जग से नाता है!

निठुर

कुहू-निशा कालिमा कामिनी-अलकों-संग सोई हिलमिल ;
ऊषा-सा विकास था मुख पर, कंज-नयन विहँसे खिलखिल,
सजा सजा अपनी फुलवारी खींच मनोहर सुन्दर चित्र ;
यौवन हो हो दिन दिन सुरभित लगा ढूँढ़ने अपना मित्र।
देखे रूप अनूप छबीले, लखे मनोहर युवक अनेक ,
देखे ठाट-बाट भड़कीले, प्रेमी बने एक से एक :
कोई उसको लगा रिझाने सीख सीख कर मोहन मंत्र ,
विविध तांत्रिक अर्धनिशा में लगे सिद्ध करने कुछ तंत्र।
देखा कितना स्वाँग प्रेम का कोई भाया उसे नहीं ,
विश्वमोहिनी ने अपना मनमोहन पाया कहीं नहीं ;
नेत्र तृप्त नहि हुए कहीं भी, हृदय कहीं भी भरा नहीं ,
जी कुम्हलाया रहा अकेले, हुआ कहीं भी हरा नहीं।

× × ×

कहीं लड़ गई आँख एक से वह भी था भोलाभाला ,
कोरा हृदय अभी रखता था, पिया नहीं था रस-प्याला;
बिजली दौड़ गई रग रग में, दोनों हुए परम आसक्त ;
ललना उस पर हुई निछावर, हुआ युवक भी उसका भक्त।
आँख लड़ी दो हृदय मिल गये, निज भावों पर भूल गये ;
दुष्टों ने बोये जो काँटे, वे प्रसून हो फूल गये ;

बढ़ता गया प्रेम नित ही नित, चढ़ता गया रंग पर रंग,
व्याकुल हुए हृदय मिलने को, मन में उठती रही उमंग।
क्षण भर चैन नहीं पड़ता था, राधा को मनमोहन बिन,
दिन कटना पहाड़ हो जाता, रात काटती तारे गिन;
अवसर पा कर कभी झलक जो पा जाता वह युवक अधीर,
तो आँखों से बातें कर कर रहा मिटाता मन की पीर।
था सम्मिलन कठिन दोनों का, बाधक था समाज-व्यवहार,
दिल का दिल ही में रह जाता, हो जातीं जब आँखें चार;
प्रेम-सुरा पी कर दोनों ही हुए प्रेम से मतवाले,
मन्त्रमुग्ध से खड़े रह गये दोनों गलबाँहीं डाले।
अकस्मात् बज गई झाँझ तो हुआ मोह दोनों का भंग,
प्रतिध्वनि सुनकर युवक हट गया, काँप गया युवती का अंग;
क्षण भर में फिर शान्ति-लाभ कर दोनों बैठे पास अधीर,
लगे सुनाने विरह-कहानी, नयन युगल में भर कर नीर।
क्या क्या कहूँ समय है थोड़ा और कथायें हैं भारी,
इस सुख से दुख भूल गया सब, बोली प्रिय से सुकुमारी;
समय आज भागा जाता है, समय समय की बलिहारी,
कभी नहीं कटता था पल भर, कभी हुआ था क्षण भारी।
कब का बैर निकाला है जो चढ़ प्रकाश के घोड़े पर,
वही समय भागा जाता है मानो लगा लिया है पर;
ठहर ठहर कह लेने तो दे प्रिय से दुख की बातें दो,
मेरे ऊपर दया दिखा कर इतना मत कठोर अब हो।

छलिया तेरा हाथ जोड़ती, इतना कहना तो ले मान,
इक क्षण रुक जा अधर पिपासित कर लें सरस सुधा-रस-पान,
तुरत विमान उठेगा मेरा, उस पर होंगे मेरे प्राण,
तुझे साथ ले उड़ जायेंगे यदि विलम्ब का हो अनुमान।
प्यारे! कहो पकड़ते हो तुम दृढ़ता से यह मेरा यह हाथ,
मैं दुनिया को दुनिया मुझको छोड़े, तुम न छोड़ना साथ।
कैसी आज घड़ी अनुपम है, पूजी मेरी अभिलाषा,
अब तक तो धोखे दे दे कर जीवित रक्खे थी आशा।
बोलो मुझको अपनाते हो या अबला को तजते हो,
कह दो साफ़, शपथ ईश्वर की या जिसको तुम भजते हो।

× × × ×

युवक बड़े असमंजस में था गूढ़ समस्या आने से,
कर न सका सुमार्ग निर्धारित जल्दी में घबड़ाने से;
सोचा, इसको अपनाता हूँ तो कुजात हो जाऊँगा,
घरवाले भी घृणा करेंगे, मुँह किस तरह दिखाऊँगा।
यदि समाज की करूँ उपेक्षा निज भविष्य पर ध्यान न दूँ,
जात-पाँत का बन्धन तोड़ूँ लोक कथन पर कान न दूँ;
तो प्यारी को अपना करके रख सकता हूँ अपने साथ,
यदि साहस हो इतना मुझमें, तो फिर उसका पकड़ूँ हाथ।
रे मन! सोच, उठा लेगा तू इस जीवन का? गुरुतर भार,
सब अपने बेगाने होंगे, सभी तरह होगा लाचार;

मारा मारा सदा फिरेगा, निज पूँजी ले देश-विदेश,
नहीं सहायक कोई होगा, सहना होगा नाना क्लेश।
कहा ज्ञान ने, कभी न होगा, मन ने कहा—नहीं कुछ बात,
कहा बुद्धि ने—सोच समझ लो, पीछे फिर मत मलना हाथ;
कहा प्रेम ने—प्रणय-मार्ग में तो उठता रहता है शूल,
इस कंटक से मत घवड़ाना, यदि लेना हो सुन्दर फूल।
वीर युवक तुम पैर बढ़ा कर यों पीछे हट जाओगे,
दृढ़ व्रत उस अबला का देखो, क्या उससे घट जाओगे?
सम्हलो, न तो विलास चाहती, न तो द्रव्य की दासी है,
उसे मान का ध्यान नहीं है, प्रेम-सुधा की प्यासी है।

× × × ×

मौन देख कर निज प्रियतम को ललना बेहद घवड़ाई,
निज प्रिय के पग छू करके यों बातें कीं मन की भाई;
"क्या मेरा सुख-स्वप्न सभी यों छिन्न-भिन्न हो जावेगा,
क्या मोहन तू छलिया बन यों मेरा मन ले जावेगा?
एकमात्र मेरी अभिलाषा के कोमल कोमल अंकुर,
क्या तू कुचलेगा पैरों से? अरे निठुर! तु अरे निठुर!"
बोला युवक, "प्रिये! तू जी में व्यर्थ न कोई शंका कर,
मैं तेरा हूँ, तू मेरी है, साक्षी है इसका शंकर;
कौन अलग कर सकता हमको हैं अभिन्न ज्यों सुरभि-सुमन,
तन पर कुछ अधिकार नहीं हो, पर स्वतन्त्र है निशिदिन मन।

दो हृदयों का नाता है यह, बंधन है यह सदा अटूट,
छूट जाय चाहे शरीर भी, साथ नहीं सकता है छूट;
कर विचार तेरे भविष्य का, सब बातों पर दे कर ध्यान,
देख अवस्था, देश-व्यवस्था, जाति, समाज और सम्मान।
नीच वासना का साधन मैं तुझको नहीं बनाऊँगा,
बड़ी भूल कर तुझे नहीं मैं अपने हाथ गिराऊँगा;
कुछ पग बढ़ा अगर आगे तो चन्द्रग्रहण लग जावेगा,
गौरव सारा मिट जावेगा, कुछ न हाथ लग पावेगा।
तू है मेरे उर की देवी, तेरा प्रेम-पुजारी मैं,
पावन प्रेम-प्रसून सदा ले पूजा करूँ तुम्हारी मैं;
दूषित भाव कीट को तुम इन कुसुमों में मत आने दो,
मद-मधुकर को अपनी वंशी हमसे दूर बजाने दो।
तेरी प्रतिमा मन-मन्दिर में मेरे सदा विराजेगी,
तनिक चूक भी इस अवसर की मुझको सदा गिरा देगी;
चाहोगी देवी होना तुम या मेरे उर की रानी ?"
गूढ़ गिरा सुन कर यह प्रिय की आँखों में आया पानी।
बोली, "मुझको अभिलाषा थी बनती चरणों की दासी,
प्रेम-नदी में मुझे डाल कर छोड़ दिया बिलकुल प्यासी;
घर, समाज, सुख, मान ज्ञान, का नाता मैं तो छोड़ चुकी,
जो कुछ होवे अब तो प्यारे नाता तुमसे जोड़ चुकी।
फिर क्या हो, है कौन जानता, यही भेंट हो अन्तिम बार,
इन चरणों को छू लेने दो, मेरे प्रियतम ! प्राणाधार !"

× × × ×

ज्यों ही चली चरण रज लेने, त्यों ही हुई पुकार कहीं,
मन की मन ही में अभिलापा दोनों के रह गई वहीं;
अवसर कहाँ बात करने का, बस दोनों ने खींची आह,
विवश अलग हो गये तुरत ही, दोनों ने ली अपनी राह।
यही भेंट का आदि-अन्त था, मिले नहीं फिर प्रेमी वे,
विरहानल में दोनों जल जल रो रो घुलते जाते थे;
जग से युवक विरक्त हुआ था, नहीं रहा कोई उत्साह,
उसका इक आदर्श प्रेम था, प्रेम-प्रिया की केवल चाह।
जिसने घर था किया हृदय में, उसकी धुन में मगन रहा,
जिससे दिल लग गया उसी से सदा लगाये लगन रहा;
शोचनीय हो गई दशा थी सुकुमारी बेचारी की,
उस मालती समान म्लान थी जो पाला की मारी थी।
श्याम बिना वह कृष्णपक्ष के शशि-समान थी क्षीन हुई,
मोहन के हित तड़प तड़प कर बिना सलिल की मीन हुई;
पड़ी सेज पर करवट लेती, रात काटती आँखों में,
अपना वह चितचोर ढूँढ़ती, जिसने लूटा लाखों में।
नहीं द्वार तक अब जा सकती करने को प्रिय की झाँकी,
दिन दिन जी को साल रही थी प्यारे की चितवन बाँकी;
बढ़ता गया रोग अन्तर का वैद्यों ने दे दिया जवाब,
अब तो दृग बस खुले हुए थे, नहीं रही उठने की ताब।
लोग देखने को जुट आये, चारों ओर निराशा थी,
दुनिया को वह छोड़ रही थी, आँखों में अभिलाषा थी।

इतने ही में भीड़ चीर कर युवक एक उन्मत्त निकल,
जा पहुँचा सिरहाने उस देवी के जो थी महा विकल;
आँखें मिलीं, चपल नयनों ने पाया अपना प्राणाधार,
जग-सी गई ज्योति फैला कर बुझती दीप-शिखा इक बार।
युवक झुका मुख रहा निरखता टपकाता टपटप दृग-नीर,
और क्षमा बस माँग रहा था, मन ही मन वह युवक अधीर;
अधर हिले मूर्च्छित देवी के, निकला 'प्रिय' सा धीमा स्वर,
और बड़ी ही व्याकुलता से पकड़ चूम प्यारे का कर।
चाहा उठ कर अंक लगाना उसने प्रिय को फिर इक बार,
आँखें उठ कर चार हुईं पर आप न उठ पाई लाचार;
आँखों में रख मूर्ति प्रेम की, कर लीं उसने आँखें बन्द,
हो स्वच्छन्द तोड़ कर बन्धन पाया उसने परमानन्द।

संसार

आँख खुली तो बेहद रोया,
कहाँ कहाँ कह सब कुछ खोया,
रही शान्ति जब तक था सोया,
अब काटूँगा जो था बोया;

स्वप्न देखता हूँ या जागा,
बचा नहीं कितना मैं भागा।

बालक था तब मुझे खेलाया,
मुझे खिलौना दे बहलाया,
दुनियादारी ने बहकाया,
माया ने आ मुझे फँसाया—

छूने चला चाँद को बौना,
नटनागर का बना खिलौना।

विश्व-विषय में रह सुख पाया,
काम क्रोध मद लोभ सुहाया,
तृष्णा ही में समय गँवाया,
भूल गया क्या करने आया;

अन्त - समय निद्रा यह टूटी,
सपने की सम्पति सब लूटी।

बन्धन से हो मुक्त बेचारा,
मदन-पंचबाणों का मारा,
पिंजड़ा तज कर कनक-सँवारा,
छोड़ विविध भोगों का चारा,
घायल पक्षी ने पर मारा,
बस अनन्त की ओर सिधारा।

जीवन

एक मौज ने मुझे बनाया,
जीवन दे मुझको अपनाया,
हवा भरी कुछ शीशा उठाया,
इस प्यारी दुनिया में आया;
फूला मैं भर कर उमंग में,
भूला मैं अपनी तरंग में।
फिरा देखता भव की माया,
मुझे लहरियों ने अपनाया,
गोदी में ले बहुत खेलाया,
थपक थपक कर मुझे सुलाया;
फिरा थिरकता ताल ताल पर,
रहा मचलता सरित-चाल पर।
नभ से तारे तोड़ मँगाये,
रहा चाँद को गले लगाये,
अपना ही इक लोक बनाये,
अपने में नभ-गंग बहाये;
रँगरँलियाँ करता मित्रों में,
भरा रंग अंकित चित्रों में।

अकस्मात् इक झोंका आया,
जिसने जीवन-दीप बुझाया,
बस अनन्त में मुझे मिलाया;
अपनों ने मुझ को अपनाया;
सूझा सब, तब था मैं भूला,
मैं था केवल एक बबूला।

जीवन-यात्रा

छोटी-सी नौका है मेरी करना है भवसागर पार,
नहीं सहायक माँझी कोई, नहीं सँभलती है पतवार;
संध्या कुछ कुछ हो आई थी सूर्य-तेज था मन्द हुआ,
तब भी माया में फँस मैं था सोच रहा स्वच्छंद हुआ;
खाता रहा थपेड़े जल के गाता रहा मनोहर गीत,
अंधकार ने घेर लिया जब तब काँपा हो कर भयभीत;
रात अँधेरी, लहर घहरती, जल का वारापार न था,
लड़ता रहा बहुत झोंकों से बढ़ने का कुछ तार न था;
दिन में झिझरी रहे खेलते भूले सुध घर जाने की,
काली निशा दिशा न सूझती बात रही पछताने की;
नौका में भी जल भर आया आँख भरी औ' हाथ भरे,
मोहन तुझ पर छोड़ दिया है तू बोरे या पार करे।

---

१ नावर, नौका का एक खेल

कौन ?

पुकारूँ किसे ? कहाँ है ? कौन ?
अपना कर्णधार नहिं पा कर बहता जाता मौन !
बहुत बीज बोये सुख के, पर उगे कहीं दो-चार ;
लखते ही लखते तुषार ने उनको भी कर क्षार—
कहा—बस, अब तू खूब पुकार !
पुकारूँ किसे, कहाँ है, कौन ?

हृदय-स्रोत से उमड़-उमड़ कर बह निकली जो धार ,
उसे रोक कर एक शिला ने, चढ़ा, दृगों से ढार—
कहा—रो रो कर खूब पुकार ,
पुकारूँ किसे, कहाँ है, कौन ?

फूलों की प्याली भर भर कर दे दे वारंवार ,
आँखों ने मदमस्त बनाया दिखला थोड़ा प्यार—
छिपीं, मैं करता रहा पुकार—
पुकारूँ किसे, कहाँ है, कौन ?

तनिक लगी थी आँख अभी होते होते भिनसार,
अरुण-शिखा ने सुखद स्वप्न के सोने का संसार—
बनाया मिट्टी, लगा पुकार ;
पुकारूँ किसे, कहाँ है, कौन ?

मन-कुरंग चौकड़ी भूलकर, सुन वीणा-झंकार;
खो-सा गया; नहीं अपने में; चुटकी ले सौ बार—
जगावे कोई लाख पुकार।
पुकारूँ किसे; कहाँ है; कौन ?

हा ! तात !

स्नेह की बूँद हृदय में डाल,
महासागर से मुझे निकाल;
अविद्या-सीपी को फिर तोड़
बना कर मोती किया निहाल ।

उसी के स्नेह-सलिल से सींच,
उसी स्वाती से पा कर आब;
मिला है जीवन को पानी,
चमकने की मुझमें है ताब ।

यकायक हुआ मेघ वह छिन्न,
हुआ धाराधर कहीं विलीन;
गये क्या छोड़ जलद अभिराम,
बना कर मुझको जीवन-हीन ?

उत्सर्ग

विकच लतिका का था जो फूल,
उसी के रुचिकर रस पर भूल,
ललकती मधुमक्खी आई,
परी-सी विकसित दिखलाई।
कलायुत सुन्दर अपना घर,
सुमन के रस से डाला भर,
विमल कोमल मधु मंजुल मोम,
हटाने को निशि का तमतोम।
रसिक लोगों ने उसे निकाल,
बना कर बत्ती उसको बाल,
प्रेम का लख अनुपम भंडार,
वार कर दिया, दिया मन वार।
उठी जो मन में प्रेम-तरंग,
निछावर होने चले पतंग,
दौड़ कर तन की सुध-बुध खो,
प्रेम से लिपटे हर्षित हो।
हुए जल कर दोनों ही राख,
दिखा कर प्रेम-पंथ की साख,

प्रेम का खींचा सच्चा चित्र,
दिखाया वह है परम पवित्र।
फूल कल हो जावेगा धूल,
राख यह बनी सदा को फूल;
अनल से और अनिल से मिल,
प्रणय का फूल गया यह खिल;
फूल यह कभी न मुरझाये,
अमर हो सौरभ फैलाये।

बंगाल

ऊषा की कोमल किरणें पहले जिसको नहलाती हैं,
जिसके पग पर अगणित नदियाँ आ कर सलिल चढ़ाती हैं।
जिसका चरणोदक पयोधि ले सूर्यकरो द्वारा वह जल,
बरसा करके सारे जग पर पावन करता विश्व सकल।
जहाँ रसा के सुन्दर तन पर लहराती धानी सारी,
जहाँ मलय के झोंके में आती सुगन्ध प्यारी प्यारी।
शैलों पर 'सालों' की शोभा, नीचे शाली की क्यारी,
लता-पाश-आबद्ध दूर तक तरुओं की अवली प्यारी।
विरही के दृग-से पर्वत के चश्मे करते हैं छल छल,
कल्लोलिनी विकल मानस को कहती हाथ उठा कल कल।
'नारिकेल' की विटप-राशि में सजल सरोवर के तट पर,
यौवन-कलश-भार से भोरी सजल कलश लादे कटि पर।
जहाँ विहरती हैं नितम्बिनी केश-केतु को फहरातीं,
पान-राग-रंजित होंठों से मंद-मंद-सी मुसकातीं।
अथवा जहाँ रसिक बंगाली कोमल स्वर में गाता है,
विह्वल हो कर कभी प्रेयसी को वह बीन सुनाता है।
अथवा नारिकेल-कुंजों में नारिकेलि होती रहती,
रम्भाओं में रम्भाओं-सँग रस की धार जहाँ बहती।

जहाँ वनों में वृक्ष-डाल पर झूल रहा हो मलयानिल,
आँखमिचौनी धूप-छाँह हों खेल रहे नीचे हिलमिल।
जिसकी झिलमिल में चीते का चीतल तन छिप जाता है,
इस प्रकाश-तम के संगम में मृग भी धोखा खाता है।
जिसके अंगों पर बहती हैं गंगा-जमुनी धाराएँ,
जिसके कटि की देख क्षीणता लज्जित होतीं दाराएँ।
मंद मंद गति सरि के तट पर जल पीने वह जाता जब,
जिधर आँख फिर जाती उसकी जंगम जड़ हो जाता सब।
रंग रंग के तोता-मैना जहाँ विहरते दल के दल,
चातक[1] और चकोर[2] कोकिला[3], मोर[4], धनेश[5], लवा[6] दहियल[7]।
सरि के तट पर चाहा[8], बगुला[9], मछुवा[10], सारस[11], आँजन[12], ढेंक[13],
वर्तें[14], लालसर[15], टीका[16], चकवा विहर रहे हैं विहग अनेक।
शंकर-जटा-जाल से गंगा निकली हुई चढ़ी आती,
जहाँ ब्रह्मपुत्रा मानस से निकली हुई बढ़ी आती।
जहाँ गले मिल मिल कर फिर दोनों सरिताएँ हुई निहाल,
बिछ है गया उमँग कर भू पर अगणित स्नेह-स्रोत का जाल।
रज लाई हैं मिला मिला कर जीवन में ब्रज-मंडल से,
कृष्णचंद्र की केलिभूमि से, राधावर के पग-तल से।
रामचंद्र की अवधपुरी से, ऋषि-मुनियों के आश्रम से,
वीरों की बलिदान-भूमि से, ब्रह्मज्ञान के उद्गम से—

१–१६ पक्षी विशेष

रज—जिसमें विभूतियाँ अगणित मिली हुई हैं सतियों की,
रज—जिसमें समाधियाँ सोईं कितने योगी-यतियों की।
रज—वह जिसमें रक्त मिला है अमर शहीदों-वीरों का,
जो स्वदेश-हित हुए निछावर अटल व्रती रणधीरों का।
रज—जिसको नित किलक किलक कर खाया कुँवर कन्हैया ने,
जिसे निकाला मुख से मोदक खिला यशोदा मैया ने।
यह पवन रज त्रिभुज-अंक में सिंधु-निकट वे भर लेतीं,
उठ उठ कितना जलधि माँगता किन्तु नहीं उसको देतीं।
प्रकृति-नटी का रंगमंच वह, रम्य देश प्यारा बंगाल,
वहाँ पहुँच कर नवदम्पति वह, छटा निरख, हो गया निहाल।

विदा

ओ स्वप्नों के संसार विदा, ओ बालकपन के प्यार विदा।
ओ शोभा के आगार विदा, मनमोहन के मनुहार विदा॥
यमुना का कलकल नाद विदा, आँखों का वह उन्माद विदा।
आमोदों का प्रासाद विदा, वह जीवन का आह्लाद विदा॥
उस मधुर कल्पना-शिल्पी के महलों का माया-जाल विदा।
उस मेरे हृदय-सरोवर के ओ सुन्दर सुखद मराल विदा॥
कौमार्य-कली की कलित कामनाओं का मौन विकास विदा।
वह दिनकर-संगम से प्राची में ऊषा का मृदुहास विदा॥
ओ अनिल-नींव पर बने हुए अभिलाषाओं के कोट विदा।
ओ क्रूरकाल के कठिन करों के अंतस्तल की चोट विदा॥
हिमसरिता में बहते विलास-विनिमय-सुख के हिमखंड विदा।
आकांक्षाओं के झंझा के झकझोर झपेट प्रचंड विदा॥
चिरपरिचित हृदय-देश अपनाने का वह विजयोल्लास विदा।
उस प्यारे शिशु के गिर गिर पैरों चलने का अभ्यास विदा॥
जिसमें मैं गुड़ियों से खेली, मेरी ममता का गेह विदा।
जिन आँखों की मैं पुतली थी उन सुहृदजनों का स्नेह विदा॥
जिसमें मैं हंस पकड़ती थी वह जलक्रीड़ा की नहर विदा।
वह सुन्दर सुन्दर राजभवन वह महामनोरम शहर विदा॥

जिसमें झूला झूला करती उस तरु की सुन्दर डाल विदा।
जो दोलित करता पेंग बढ़ा वह कोमल बाहु विशाल विदा॥
आनंद-अश्रु जो फैलाता वह जीवन का वर स्रोत विदा।
अवलम्ब रहा जो जलप्लावित का वह आशा का पोत विदा॥
वह इन्द्र-धनुष-सा शुभ्र विरह-वारिधि का सुन्दर सेतु विदा।
उस करवट ले ले सोनेवाले मंदभाग्य की चेत विदा॥
वह छिप छिप कर उठनेवाली मन की आनंद-हिलोर विदा।
मेरे मानस में बंदी होनेवाले वे चितचोर विदा॥
प्यारे दामन की पट्टी से बाँधे चोटों की टीस विदा।
उस मरु-प्रदेश में खोई सरिता-धारा के वारीश विदा॥
जो नहीं आ सके पुनः बाग़ में मेरे विहग-वसंत विदा।
घेरे घेरे जो फिरता था मुझको वह दिव्य दिगंत विदा॥
वह क्रीड़ा में कपोत के उड़ने पर कुछ खिंची कमान विदा।
जिसको पी पी कर मस्त हुई मैं वह मादक मुसकान विदा॥
सोहन-मंत्रों से अंकित उन अलभ्य अधरों की छाप विदा।
उन कुंजों के एकांतवास के अभिनय, प्रेमालाप विदा॥
उस मेरी स्वप्न कहानी पर उनके विस्मय का रंग विदा।
अलि-आलिंगन से मुकुल-अधर पर हल्की हास्य-तरंग विदा॥
कुंतल में कलियाँ गूँथ गूँथ कर करनेवाला प्यार विदा।
उपहार हार मेरे उर का वह यौवन का शृंगार विदा॥
छू नहीं सकूँगी तुमको अब मेरे भविष्य के चाँद विदा।
सब तार नियति ने तोड़े हैं मोदक सरोद के नाद विदा॥

लंगर खींचे, सब पाल खुले, जाता विदेश जलयान विदा।
हृदयाम्बुधि के उर्मिल थपेड़ तट ले जाते नहिं मान विदा॥
विस्मृति-सागर में डुबा रही हूँ, हठ कर आती याद विदा।
वह लहरों-सी उठ आती है इंगित से बुला सनाद विदा॥
वे हिचकी बन कर आते हैं आँसू बन कर हो गये विदा।
वे पीड़ा बन कर उठते हैं क़िस्मत बन कर सो गये विदा॥
स्वच्छन्द विहग की सदा अपरिमित ऊँची सुखद उड़ान विदा।
नैराश्य-निशा का कभी न होनेवाला सुखद विहान विदा॥
नव-तरल-तरंग-तड़ित बहती तटनी के परिचित कूल विदा।
प्रतिकूल-प्रवाह-प्रगति-नौका के पूर्व पवन अनुकूल विदा॥
ओ भ्रान्ति विदा, ओ शान्ति विदा, ओ अपनी भोली भूल विदा।
ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूल विदा॥

'भक्त' जी का प्रसिद्ध महाकाव्य

नूरजहाँ

देखिए विद्वानों की संमतियाँ क्या हैं—

हिन्दी के पितामह आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—आपकी यह कृति सुन्दर, सरस और काव्योचित गुणों से अलंकृत है। त्वं जीव शरदः शतम्।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर श्री अमरनाथ झा जी लिखते हैं—

Those critics who complain against the barrenness of Modern Hindi poetry and turn up their nose against its mystic vagueness and obscurity will do well to read NURJAHAN. It is a narrative poem, with a good deal of nature poetry in it. Th. Gurbhakt Singh has won for himself a unique position, as the Goldsmith or Crabbe of Hindi poetry. His work has received high at the hands of many eminent scholars. In the book before us he has tried a new method with considerable success. In about 150 pages he has related the ever fresh story of the

queen, whose royal beauty and maginficence now repose in Lahore, but who, during her years of influence excercised supream power over tha entire Mughal Empire. The poet's attempt deserves to be warmly commended, and it may be hoped that others will follow his example of widening the range of Hindi poetry and not confining it to the lyric alone.

साहित्यरत्न पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रोफेसर शान्ति-निकेतन लिखते हैं—भाषा की ऐसी सरलता, वर्णन की ऐसी प्रांजलता और निरीक्षण की ऐसी सूक्ष्मता 'नूरजहाँ' के प्रत्येक पन्ने में देखकर बारंबार मन में यही आता है कि हिन्दी में तो एक नई चीज है—अद्वितीय……कुछ कवि के काव्य-चातुर्य्य से, कुछ अपनी सौन्दर्य-विस्मारिणी बुद्धि से, कुछ प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य का साक्षात्कार करके जी में आता है, चिल्ला कर कह दें यह कवि तो अपने ढंग का अकेला है—Unique.

यह पुस्तक हमसे मँगाइए। मूल्य…………

सरस्वती मंदिर, जतनबर, काशी।